अध्याय–३

# थाट और उनके जन्य राग

संगीत कला स्वयं में एक सम्पूर्ण ब्रह्मांण्ड की गहनता रखती है । जिस तरह हमने प्रकरण–१ में संगीत की उत्पत्ति की चर्चा की उसी तरह अब हम संगीत में ही किए गए वर्गीकरण एवं विभिन्ना शैलीओं की बात करेंगे ।

आनंद–सुख के पर हो कर इन्सान को मोक्ष के मार्ग की और ले जाने वाले शास्त्रीय संगीत का अस्तित्व आज भी मानव चीत्त से स्थिर स्थान ग्रहण किए हुए है । प्राचीनकाल में हिन्दुस्तान में एक मात्र संगीत पद्धति पाई जाती थी । किन्तु मुगलो के आगमन की असर न केवल भारतीय परम्परा पर किन्तु सम्पूर्ण संगीत प्रणाली पर भी हुई । मुगल साम्राज्य के आगमन पश्चात हिन्दुस्तान का संगीत दो विधाओं मे बटगया एक कर्णाटक संगीत पद्धति जिसे हम दक्षिण हिन्दुस्तानी पद्धति भी कह सकते है और दुसरी उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति जिसकी चर्चा ही मेरा शोध विषय का आधार है ।

शोधकर्ता के अनुसार उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के स्वतंत्र अस्तित्व के पश्चात् समय के बदलाव के साथ–साथ उसमे भी सम्पूर्णतः परिवर्तन की नोंध की गई । अगर अभी वर्षो में आए हुए सागीतिक परिवर्तनों को एक वाक्य में बताना चाहे तो संगीत में अनुशासन के आने के पश्चात् सर्वप्रथम ग्राम–मूर्च्छना – जाति का चलन आया जिसकी चर्चा हम आगे आनेवाले प्रकरण में करेंगे, उसकी मर्यादाओं के परिणाम से चलन में आया राग–रागिनियाँ प्रथा जिसकी चर्चा में इस प्रकरण में करना चाहूँगी और इस चलन के बाद भी आया हुआ परिवर्तन की जो आज भी चलन में है वह है मेल–राग वर्गीकरण या ठाठ–राग वर्गीकरण जो मेरे विषय का आधार है उसकी आनेवाले प्रकरण में आगे विस्तृतीकरण में चर्चा की जाएगी ।

## 3.1 भारत में संगीत की पद्धति

भारतीय शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः दो पद्धतिया मानी गई है ।

(१) कर्णाटकी (दक्षिण) संगीत पद्धति

(२) उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति

### ❖ उत्तर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति एवं उसके चार मत

संगीत रत्नाकर मे २६४ राग बताये गये हैं, जिन्हें राग, ग्राम राग, ऊपराग, भाषा राग, विभाषा राग, अंतर भाषा राग, रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपारंग ऐसे १० वर्गों में विभाजितकिया गया है । रागार्णव नामक ग्रंथ में ३६ रागों को प्रमुख राग माना गया है । उनमें भैरव पंचम, नट, मल्लारी, मालव गौड और देशांग इन छः रागों को मुख्य राग मानकर हरएक के पांच-पांच आश्रित राग मिलकर कुल तीस और छः मुख्य राग ऐसे कुल मिलाकर ३६(छतीस) रागों का स्वीकार किया गया था । अन्यत्र लेखकों ने छः पुरुष राग और कुछ संगीत सम्बन्धी ग्रंथों में पुरुष रागों की पांच-पांच स्त्री रागिनियाँ और पांच-पांच पुत्र रागों को मिलाकर६६ (छियासठ) राग-रागिनियों को मान्यकिया है । इसके अलावा अन्य ग्रंथकारों के मतानुसार रागों की संख्या ४८, १३२ और १६०० मानी गई है । शास्त्रों में रागों के बारे में विविध मंत्रो की चर्चा की गई है, जिनमें से अगत्य के मत इस प्रकार है ।

### 3.1.1 शिवमत

पं. दामोदर रचित 'संगीत दर्पण' ग्रन्थ के अनुसार आदिपुरुष महेश्वर भगवान शिव रागों के जन्मदाता है । शिवमत के अनुसार मुख्य पांच राग हैं उन रागों के तीन प्रकार हैं । (१) शुद्ध राग (२) सालग अथवा छायालग (३) संकीर्ण । भगवान शंकर के पांच मुखों में से एक एक राग का जन्म हुआ । इस तरह कुल छः मुख्य राग (१)भैरव (२) मालकोंस (३) हिंडोल (४) दीपक (५) श्रीराग (६) मेघराग । प्रथम उत्पन्न हुए ये छः राग शुद्ध राग है । शुद्ध रागों की छाया में से छतीस सालग राग उत्पन हुए । शुद्ध राग मतलब शिव रूप और सालग राग यानी शक्तिरूप । इन दोनों के मिश्रण से उत्पन्न हुए राग यानी संकीर्ण रूप राग । इस तरह षट् परिवार रागों का वेदों, शास्त्रों और

ग्रंथों के आधार पर वर्णन किया गया है । (षट् परिवार) रागों की नीचे दी गई । (1)

| षट् राग परिवार | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| राग का नाम | शंकर के किस मुख से उत्पन्न हुआ है ? | राग की ऋतु और गाने का समय | उत्पन्न होनेवाला रास | स्त्री रागिणियां | पुत्र राग (उपराग) | पुत्रवधू रागिणियों (उपरागिणीयां) |
| भैरव | आघोर | ग्रीष्म<br>प्रात:काल | शान्त<br>रौद्र<br>भयानक | मधु माधवी<br>भैरवी<br>बंगाली<br>वेराडी<br>सैंघवी | बड़ हंस<br>खट<br>बरवा<br>बिभास<br>देशकार | सोरठी<br>पूर्वी<br>जेतश्री<br>इमनकेदारी<br>जयजयवंती |
| मालकौंस | वामदेव | वसन्त<br>रात्रि का<br>चौथा प्रहर | शृंगार<br>हास्य<br>रौद्र<br>अद्‌भुत | तोड़ी<br>खमायची<br>गौड़ी–गौरी<br>गुणकली<br>कक्कुंभ | बाघेसर<br>सुधराई<br>चैत<br>गौरा<br>अड़ाणा | केदारनट<br>शुद्धनट<br>यमनी<br>गोधनी<br>खेम |
| हिंडोल | तत्पुरुष | शरद रात्रि का<br>चौथा<br>प्रहर | शृंगार<br>वीर | बिलावल<br>रामकली<br>देशाख<br>पटमंजरी<br>ललित | देवगीरी<br>बिरावरी<br>सूहा<br>अल्हैया<br>पंचम | धवलगीरी<br>मारू<br>इमनकल्याण<br>पूरीया<br>हमीर |
| दीपक | पार्वती के<br>मुख में से | हेमन्त<br>सांझ और<br>रात्रि का<br>पहला प्रहर | वीर<br>अद्‌भुत | केदार<br>कानडा<br>देशी<br>कामोद<br>नट | जैत<br>नायकी<br>काफी<br>शाम<br>छायानट | परज<br>कामोदनट<br>लच्छाशाख<br>नटमल्लारी<br>बिहागड़ा |
| श्रीराग | सद्योजात | शिशिर<br>दिन का<br>चौथा प्रहर | शृंगार<br>वीर | वसंती<br>मालवी<br>मालश्री<br>आसावरी<br>धनाश्री | वरार<br>चोरासटंक<br>लाचारी<br>क्वेगीया<br>गंधार | लंकादहन<br>सोहनी<br>पहाड़ी<br>गौड़सारंग<br>शंकराभरन |
| मेघ | ईशान | वर्षा<br>दिन का<br>तीसरा या<br>छट्ठा प्रहर<br>या हंमेशा | वीर<br>शृंगार<br>भयानक<br>हास्य | मल्हार<br>भूपाली<br>गुर्जरी<br>टंक<br>सारंग | गौड<br>कल्याण<br>बृंदावनी<br>त्रिवन<br>सावंत | मुलतानी<br>हेम<br>खंबावती<br>मालीगौर<br>मलुहा |

1. बर्वे, गणपतराव गोपालराव / संगीत के मूल तत्वों की शिक्षा विभाग–२ / पृ. 249

### 3.1.2 हनुमानमत

हनुमानमत के अनुसार छः मुख्य राग माने गये हैं, जिनमें (१) भैरव (२) कौशिक (३) हिंडोल (४) दीपक (५)श्री और (६) मेघ । (इस मत के मुताबिक मेघ राग को पुरुष राग माना गया है ।)

**१. भैरव राग की स्त्री रागिनियाँ :**

१. मध्यमादि २. भैरवी ३. बंगाली ४. बराडी ५. सैंघवीं

**२. कौशिक राग की रागिनियाँ**

१. तोड़ी २. खंबावती ३. गौरी ४. गुणकली ५. ककुमा

**३. हिंडोल राग की रागिनियाँ**

१. बेलावली २. रामकली ३. देवशाख ४. पटमंजरी ५. ललित

**४. दीपक राग की रागिनियाँ**

१. केदारी २. कानड़ा ३. देशी ४. कामोदी ५. नटिका

**५. श्री राग की रागिनियाँ**

१. बासन्ती २. मालवी ३. मालसिरी ४. धन्नासिका ५. आसावरी

**६. मेघ राग की रागिनियाँ**

१. देशकारी २. मल्लारी ३. भूपाली ४. गुर्जरी ५. टंकी [(1)]

### 3.1.3 रागर्णव ग्रन्थमत

इस ग्रन्थ के अनुसार प्रमुख छः पुरुष राग माने गये हैं । (१) भैरव (२) पंचम (३) नट (४) मेघ मल्हार (५) गौड़मालव (६) देशाख ।

**१. भैरव की रागिनियाँ**

१. बंगाली २. गुणकली ३. मध्यमादि ४. वासन्ती ५. धनाश्री

**२. पंचम की रागिनियाँ**

१. ललिता २. गुर्जरी ३. देशी ४. वराडी ५. रामकली

1. चौधरी, सुभाष रानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 95

**३. नटराग की रागिनियाँ**

१. नट नारायणी २. गांधारी ३. सालंग ४. कर्णाटक ५. केदार

**४. मेघमल्हार की रागिनियाँ**

१. मेघ २. मल्लारी ३. मालकौशिक ४.पटमंजरी ५. आसावरी

**५. गौड़मालव की रागिनियाँ**

१. हिन्डोली २. त्रिवणा ३. सांधाली ४. गौरी ५. पठहंसिका

**६. देशाख की रागिनियाँ**

१. भूपाली २. कामोदी ३. नटिका ४. कुड़ापी ५. बेलावली

### 3.1.4 कल्लीनाथ मत

इस मत के अनुसार छ पुरुष राग और हर एक पुरुष राग की छ:रागिनियाँ हैं । छ: पुरुष रागों में (१)श्री (२) बसन्त(३) भैरव (४) पंचम (५) मेघ (६) ब्रहनट का समावेश होता है ।

**१. श्री राग की रागिनियाँ**

१. त्रिविणा २. गौरी ३. मालवी ४. केदारी ५. पहाड़ी ६. मधुमाधवी

**२. बसन्त की रागिनियाँ**

१. बैराटी २. देवगीरी ३. तोड़ी ४. देशी ५. ललिता ६. हिन्डोली

**३. भैरव राग की रागिनियाँ**

१. गुर्जरी २. रेवा ३. भैरवी ४. बंगाली ५. बकुली ६. गुणकली

**४. पंचम राग की रागिनियाँ**

१. बिभास २. भूपाली ३. कनोटी ४. बडहंसिका ५. मालश्री ६. पटमंजरी

**५. मेघ राग की रागिनियाँ**

१. मल्हारी २. सोरठी ३. सौवीरी ४. गांधारी ५. हरसिंगार ६. कौशिकी

**६. ब्रहनट राग की रागिनियाँ**

१. कामोदी २. कल्याण ३. सारंग ४. नटिका ५. नटहमीर ६. आभेरी [1]

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदि / पृ. 59

### 3.1.5 भरत मत

इस मतानुसार भैरव, मालकोंश, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ राग प्रत्येक की पाँच – पाँच रागिनियाँ और आठ–आठ पुत्र और पुत्रवधुएं मानी गई है ।

**१. भैरव राग की रागिनियाँ**

१. मधुमाधवी २. ललिता ३. बरोरी ४. भैरवी ५. बहुली

**२. मालकोंश राग की रागिनियाँ**

१. गुर्जरी २. विद्यावती ३. तोड़ी ४. खम्बावती ५. ककुभ

**३. हिंडोल राग की रागिनियाँ**

१. रामकली २. मालवी ३. आसावरी ४. देवरी ५. केकी

**४. दीपक राग की रागिनियाँ**

१. केदारी २. गौरी ३. रूद्रावती ४. कामोद ५. गुर्जरी

**५. श्री राग की रागिनियाँ**

१. सैंधवी २. काफी ३. ठुमरी ४. विचित्रा ५. सोहनी

**६. मेघ राग की रागिनियाँ**

१. मल्लारी २. सारंग ३. देशी ४. रतिवल्लभा ५. कानरा (1)

### 3.1.6 मुहम्मद रजा मत

पटना के मुहम्मद रजा ने अपनी पुस्तक 'नगमाते आसफी' में १८१३ में उपर्युक्त मतों की आलोचना की । उन्होंने तत्कालीन राग–रागिनी पद्धति को अवैज्ञानिक सिद्ध किया और नयें वर्गीकरण की खोज़ में लग गए । किन्तु स्वयं राग–रागिनी पद्धति के बहार नहीं जा सके । उन्होंने राग और रागिनियों में सामंजस्य स्थापित करते हुए हनुमानमत से मिलते जुलते ६ राग व ३६ रागिनियों की नई पद्धति बनाई । यह पद्धति कुछ समय तक प्रचलित रही । उनकी राग–रागिनियों में में कुछ समता अवश्य थी । उनकी नवीनता यह थी की उन्होंने काफी के स्थान पर बिलावल को

---

1. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र / राग परिचय भाग–३ / पृ. 165

शुद्ध थाट माना । पं. भातखंडे जी ने स्वीकार किया है कि मुहम्मद रजा के इस वर्गीकरण में राग और उनकी रागिनियों में कुछ समता अवश्य थी परंतु इतना पर्याप्त नहीं है ।

मुहम्मद रजा की ६ राग और ३६ रागिनियाँ :

**१. भैरव राग की रागिनियाँ**

१. भैरवी २. रामकली ३. गुर्जरी ४. खट्ट ५. गांधारी ६. आसावरी

**२. मालकोंश राग की रागिनियाँ**

१. बागेश्वरी २. तोड़ी ३. देशी ४. सूघराई ५. सूहा ६. मुलतानी

**३. हिंडोल राग की रागिनियाँ**

१. पूरिया २. बसंत ३. ललित ४. पंचम ५. धनाश्री ६. मारवा

**४. श्री राग की रागिनियाँ**

१. गौरी २. पूर्वी ३. गौरा ४. त्रिवण ५. मालश्री ६. जैताश्री

**५. मेघ राग की रागिनियाँ**

१. मधुमाध २. गौड़ ३. शुद्ध सारंग ४. बड़हंस ५. सामन्त ६. सोरठ

**६. नट राग की रागिनियाँ**

१. छायानट २. हमीर ३. कल्याण ४. केदार ५. बिहागडा ६. यमन (1)

शोधार्थी को शोध दरम्यान यह ज्ञात हुआ कि, इस विषय पर विद्वानों में एक मत नहीं है । पं. भातखंडेजी के अनुसार भरत की श्रुतियाँ समान दूरी पर फैली हुई थीं अर्थात् प्रत्येक दों निकटवर्ती श्रुतियों का अंतर बराबर था । उनके मुताबिक अगर श्रुतियाँ समान न होती तो सारणा चतुष्टई का प्रयोग कभी भी ठीक प्रकार से कार्यान्वित न होता । कुछ विद्वानों ने इस मत की पुष्टि की है और कुछ ने खंडन भी किया है ।

1. श्रीवास्तव, हरिश्चंद्र / राग परिचय भाग-३ / पृ. 167

इसके अलावा सकल शास्त्र निरूपण बंसरी राग माला ग्रन्थ और श्री रामेश्वर लिखितग्रन्थ में भी राग रागिनियों के बारे में विविध मान्यताएं पेश की गई है, जिनमें पुरुष राग, उनकी स्त्री रागिनियाँ पुत्र राग एवं पुत्रवधू राग तक के बारे में आलेखन हुआ है । ये तमाम प्रथाएं संगीत के प्राचीन काल के लिये उपयोगी थीं । परंतु संगीत परिवर्तनशील होने के कारण उपर्युक्त राग–रागिनियोंवाली पद्धति तर्क की कसोटी पर खरी न उतरने के कारण वे कालक्रमानुसार नष्टप्राय: हो गई । यह पद्धति अव्यवस्थित और गणित के उपयोग रहित होने की वजह से लोगों को वह सीखने समझने के लिए कष्टदायक बन गई थी । संगीतशास्त्र के विद्वानोंने संगीत की राग–रागिनियों को व्यवस्थित करने की दिशा में ध्यानदिया क्योंकि यह समय परिवर्तन का समय था । दक्षिण भारत के संगीत विषय के सुप्रसिध्ध विद्वान पंडित वैंकटमुखि ने करीब २७० वर्ष पहले यानी १७वीं शताब्दि के उतरार्ध में राग–रागिनियों के वर्गीकरण की पद्धति में परिवर्तन करके उसमें गणितशास्त्र को जोड़ दिया और राग–रागिनियों की समझ के लिए सीधी सादी और नवीन पद्धति को जन्मदिया । संगीत क्षेत्र के साथ जुड़े हुए लोगों ने बड़े उत्साह के साथ इस सरल पद्धति का स्वीकार किया । पंडित वैंकटमुखि ने सिद्ध कर दियाकि जब तक हम १२ स्वरों का एक सप्तक में स्वीकार करते रहेंगे तब तक सप्तक मे से जनकमेल या थाट ७२ प्रकार से ही उत्पन्न किये जा सकते हैं । इस पद्धति के विषय में राष्ट्र के महान संगीतकारों ने विचार मनन और चिन्तन करने के बाद एक मत से उसकी उपयोगिता का स्वीकार किया । संगीत के ऊपर खोज़ करते पश्चिमी देशों के विद्वानों ने भी इस पद्धति के ऊपर विचार–चिंतन किया । मि. ई. किलमेन्ट (जिला सेशन्स जज–पूना) तथा केप्टन विलोर्डने भी वर्गीकरण पद्धति के स्थान मेल पद्धति का स्वीकार किया । केप्टन विलोर्ड द्वारा लिखित A Treatise of the music of Hindustan नामक ग्रंथ के ऊपर राग–रागिनि वर्गीकरण के बारे मे लिखा है कि प्राचीन समय में राग–रागिनियों की निश्चित पद्धति थी मगर अब वह मान्य नहीं रह सकती । वर्तमान समय में मेल पद्धति ही उतम है ।(1)

हिंदुस्तानी और कर्नाटक, दोनों संगीत–प्रणालियों की आधुनिक बन्दिशों का यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए, तो यह पता चलेगा कि इनका प्राचीन प्रबंधों से कुछ–न–कुछ सम्बन्ध है ।

---

1. केप्टन विलोर्ड / A Treatise of the music of Hindustan / पृ. 57

जहाँ तक हिंदुस्तानी संगीत का प्रश्न है, खयाल की ऐसी कई बंदिशें मिलती है, जिनमें स्थायी के अलावा एक या दो अंतरे हैं और इन्हें द्विधातु एवं त्रिधातु प्रबंधों के समान माना जा सकता है । ध्रुवपद, जिसमें चार अंग–स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग होते हैं, प्रायः चतुर्धातु–प्रबंधों के समान है । जहाँ तक दक्षिण का सम्बन्ध है, सत्रहवीं शताब्दी तक प्रबंधों का प्रचलन था । यह आश्चर्यजनक लगता है कि पं.व्यंकटमखी के समय तक प्रबंधों का अस्तित्व रहने के बावजूद वे यकायक अप्रचलित हो गए ।

धार्मिक क्षेत्र में हुए पुनर्जागरण और भक्तिपूर्ण गतिविधियों के साथ भजन, दिव्यनाम–संकीर्तन, उत्सव–संप्रदाय–कीर्तन तथा नामावली आदि की रचना होने लगी । जयदेव का 'गीत–गोविंद' और तल्लपकम् की रचनाएँ पवित्र संगीत की श्रेणी में आती हैं । चिन्मैया ने कीर्तन के अलावा उत्सव–पदाति, तोडायम्, हेच्छारिका, धूप–दीप–नैवेद्य, वसन्तोत्सव, दोलोत्सव आदि के गीत लिखे । त्यागराज ने 'तोडाया मंगलम्' के साथ ये भजन आरंभ किए । बाद में इन भजनों का कीर्तन – स्वरूप विकसित हुआ और उनकी परिणति आधुनिक कृति–प्रणाली में हुई । महान् संत पुरंदरदास ने भी कीर्तनों और कृतिओं की रचना में भारी योगदान किया । त्यागराज, मुत्तु स्वामी दीक्षितरं और श्यामा शास्त्रीने दक्षिण की रचनाओं को बहुत समृद्ध किया । एक ओर प्रबन्धों का प्रचलन था तो दूसरी ओर भक्ति–कार्यों के लिए कीर्तन–रचना की परम्परा शुरू हो गई थी । समय के साथ अगणित कीर्तनों और कृतियों की रचनाओं ने प्रबंधों का स्थान ले लिया । इसमें संदहे नहीं कि संगीतज्ञों में प्रबन्धों का प्रचार रहा, किंतु वह कीर्तनों का मुकाबला नहीं कर सका ।

हिंदुस्तानी और कर्नाटक–शैलियों के आधुनिक स्वरूप के विकास के विश्लेषण के बाद इन दोनों प्रणालियों में समानता और असमानता पर दृष्टिपात करना संभव हो सकेगा ।

उत्तर और दक्षिण दोनों में आधुनिक काल में उपलब्ध महत्वपूर्ण स्वरूप इस प्रकार है :–

| **हिंदुस्तानी–संगीत** | | **कर्नाटक–संगीत** | |
|---|---|---|---|
| (१) | अलंकार | (१) | अलंकारम् |
| (२) | लक्षण–गीत | (२) | लक्षण–गीतम् |
| (३) | सरगम | (३) | स्वरजति |

| हिंदुस्तानी–संगीत | | कर्नाटक–संगीत | |
|---|---|---|---|
| (४) | आलाप | (४) | आलापनम् |
| (५) | द्रुत खयाल | (५) | द्रुत कलाकृति |
| (६) | मध्यलय खयाल | (६) | मध्यम कलाकृति |
| (७) | विलंबित खयाल | | |
| (८) | ध्रुवपद | (७) | रागम् तानम् पल्लवि |
| (९) | धमा | | |
| (१०) | तराना | (८) | तिल्लाना |
| (११) | ठुमरी | (९) | पदम् और जावलि |
| (१२) | भजन | (१०) | भजन [1] |

अलंकार हिंदुस्तानी संगीत के आरम्भिक चरणों में बहुत महत्वपूर्ण चरण हैं । इसी प्रकार कर्नाटक–संगीत में भी आरम्भिक चरणों में अलंकार को प्रमुख–स्थान दिया गया है । हिंदुस्तानी संगीत में लक्षण–गीत वे सरल रचनाएँ हैं, जिनसे राग का विशेष स्वरूप प्रकट होता है । उनका आरोह–अवरोह, गायन का समय, वादी, संवादी, वर्ज्यावर्ज्य स्वर तथा अन्य विवरण सामने आता है । हिंदुस्तानी संगीत में सरगम सरल 'सोल्फा' स्वरलिपि–रचना है, जो विभिन्न रागों और तालों में होती है । दक्षिण में स्वरजति, जो विभिन्न रागों एवं तालों में रहती है, अध्ययन के आरम्भिक चरण का अंग है ।

हिंदुस्तानी संगीत के कार्य में आलाप महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से जब ध्रुवपद–गायन हो अथवा ततवाद्य–वादन । दक्षिणी प्रणाली में आलापना प्रायः हिंदुस्तानी संगीत के समान है । आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत कार्यक्रम का आवश्यक अंश विलंबित खयाल है, जिसके बाद मध्य लय का खयाल और अन्त में तीव्र गति में द्रुत खयाल उसी राग में मिलता है । ध्रुवपद में आरंभिक आलाप में ही राग का व्यापक विस्तार करना पड़ता है । इसके नियम कठोर हैं और इसकी जान ही विलम्बित में है । तराना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें 'नोम् ; 'ना', 'तोम्' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका कम महत्व हैं ।

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 58

कर्नाटक–संगीत (दक्षिण–भारतीय संगीत) में कृति महत्वपूर्ण अंश है । इसमें गायक एवं रचनाकार को अपनी रचनात्मक प्रतिभा के प्रदर्शन का असीमित क्षेत्र मिलता है । इसके मुख्य अंग पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् हैं । ताल अथवा राग के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं है । कल्पना–स्वर भाग पूर्णतया लयप्रधान है । हिंदुस्तानी संगीत की बोल– तानों में समान स्वरूप दक्षिण के निरवल से मिलता है, पर कल्पना–स्वर कर्नाटक–संगीत का अलग अंग है । कर्नाटक–संगीत में रागम्–तानम्–पल्लवि एक आवश्यक सर्जनात्मक संगीत है । इसमें संगीत को अपने सांगीतिक कौशल, कल्पना–शक्ति और व्यक्तिग योगदान के प्रदर्शन का अवसर मिलता है । पल्लवि कर्नाटक–संगीत का सबसे बड़ा अंश है, जिसमें संगीतज्ञ की योग्यता एवं स्तर का पता चलता है । इससे कार्यक्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होती है । दक्षिण का तिल्लाना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है । पदम् और आवलि दक्षिण का सुगम शास्त्रीय संगीत है, जो ठुमरी और टप्पा के समान है । इस प्रकार यह प्रकट होता है कि दक्षिण और उत्तर के संगीत की आधुनिक रचनाओं में प्रायः समानता मिलती है और इनके निर्माण में मध्य–युग के प्रबंध काफी हद तक आदर्श रहे हैं ।

शोधकर्ता के अनुसार दोनों पद्धतियों की पृथकता का एक कारण ताल–गति है । हिंदुस्तानी संगीत के अति विलंबित आरंभ में दक्षिणी श्रोता की दिलचस्पी नहीं रहती, जबकि कर्नाटक संगीत के आरंभ में द्रुत लय के कारण दोनों में समान आधार नहीं मिलता । हिंदुस्तानी संगीत में एक पंक्ति का साहित्य रहता है और उसी पर गायक को काफी समय तक राग–विस्तार करना पड़ता है । यह बात बड़े और छोटे खयाल पर भी लागू होती है । दक्षिणी पद्धति की कृतियों में पल्लवि, अनुपल्लवि तथा एक अथवा दो चरणम् अपेक्षाकृत काफी साहित्य रहता है और इनके प्रस्तुतीकरण का समय कम रहता है । कर्नाटक संगीत कार्यक्रम में सामान्यतया दस कृतियाँ पेश की जाती हैं ।

हिंदुस्तानी संगीत में संगतिकार को, विशेष परिस्थिति को छोड़कर, एकाकी प्रदर्शन का कम अवसर मिलता है, जब कि दक्षिणी संगीत में संगतिकार को कला–प्रदर्शन का कायी अवसर मिलता है ।

## 3.2 थाट

**"मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान् ।"(1)**

अर्थात् – 'मेल' (ठाठ) स्वरों के उस समूह को कहते है, जिससे राग उत्पन्न हो सके । नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से 'ठाठ' तैयार होते है ।

रागों की उत्पत्ति सात स्वरों से युक्त विभिन्न थाट या मेल द्वारा होती है । थाट ही राग का उद्दगम स्थान माना जाता है । प्रत्येक राग किसी न किसी नियमित स्वर–सप्तक से उत्पन्न है । राग रचना का संबंध थाट से है । थाट अथवा ठाठ की उत्पत्ति सप्तक के १२ स्वरों से होती है । सप्तक का अर्थ सात स्वरों का समुदाय है । सप्तक को ग्रंथों में मेल संस्थिति आदि नामों से पुकारा गया है । सातों स्वरों को क्रमानुसार उच्चारण को सप्तक कहते है । नाद से स्वर, स्वर से सप्तक, सप्तक से ठाठ की उत्पत्ति होती है । संस्कृत ग्रंथकार ठाठ को मेल कहते है । एक सप्तक में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर १२ स्वर होते है । उसके प्रत्येक सप्त–स्वर–क्रम को लेकर ठाठ निर्मित होते है ।

डॉ. भगवन्त कौरने अपनी पुस्तक परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत में थाट की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है : "सात स्वरों के क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो उसको थाट या मेल कहा जाता है । मेल या थाट एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द है, क्योंकि प्रमाणिक संगीत ग्रंथों में वर्गीकरण की इस श्रेणी के लिए मेल शब्द का प्रयोग किया गया है ।(2)

संगीत के इतिहास से पता लगता है कि संगीत में समय–समय पर अलग–अलग तरह की शैलियों का प्रचार हुआ और उनको भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न वर्गीकरण के अंतर्गत बाँटा गया । मेल वर्गीकरण के अंतर्गत थाटों की संख्या के विषय में अनेक मत होने के कारण यह पद्धति धीमे धीमे समाप्त होती गई । १७वी सदी में दक्षिण के निवासी पं.वैंकटमुखी ने चर्तुंदण्डिप्रकाशिका नामक ग्रंथ में गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक से अधिक ७२ मेल या थाट बन सकते है ।

श्री तीर्थराम आज़ाद जी ने अपनी 'कत्थक ज्ञानेश्वरी' पुस्तक में 'ठाठ' शब्द के लिए अपने मत को सामने रखते हुए कहा है कि, 'नृत्य में 'ठाठ' नवाब वाजिदअली शाह के दरबार की देन है ।

---

1. भावभट्ट / अभिनव रागमंजरी / पृ. 7
2. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 90

उनका यह भी मानना है कि, इस शब्द का जन्म 'मुगल काल' में हुआ होगा । नवाबों की राजसी 'ठाठ – बाट' से प्रेरीत होकर 'ठाठ' शब्द की उत्पत्ति प्रतीत होती है ।

'ठाठ' शब्द को लेकर दिलचस्प बात यह है कि, यह शब्द उर्दू या फारसी का भी नहीं है । कितनी विचित्र बात यह है कि ठाठ शब्द न तो संस्कृत का है और न अरबी –फारसी का, मगर इस से भी अधिक विचित्र बात यह है कि इसका संगीत और शास्त्रीय नृत्य में इतना गहरा संबंध जुड़ गया है कि संगीत और नृत्य के समस्त आचार्य इस शब्द का निरंतर प्रयोग करते आ रहे है ।

इतना तो सत्य है कि ये शब्द मूल नहीं है, क्योंकि इसके कंइ रूप प्रचलित है जैसे कि ठाठ, थाट, ठाट... यदि यह शास्त्र का मूल शब्द होता तो लय, मध्य, विलंबित द्रुत आदि शब्दों की भांति इसका भी एक निश्चित रूप प्रचलित होता ।

'ठाठ' शब्द संस्कृत में 'सौष्ठव' शब्द का बदला रूप है, 'सौष्ठव' शब्द का प्रयोग संगीत में आदिकाल से ही प्रचलित है । भरतमुनि कृत ''नाट्यशास्त्र'' में 'सौष्ठव' शब्द का वर्णन विस्तार से किया गया है । गायन के लय–ताल समन्वित लघु अंग संचालन की प्रारंभिक क्रिया को सौष्ठव कहते है ।

भाषा विज्ञान के नियम अनुसार 'सौष्ठव' शब्द का कालान्तर में रूप बदला । उसका प्रत्यय पीछे से हटा और उसके स्थान पर दूसरा 'ठ' जुड गया । साथ ही प्रारम्भ के दोनों 'स' तथा 'औ' की मात्रा हटे और उनका लोप होने पर 'ठ' अप्रत्ययवाची बनकर 'ठाठ' शब्द बन गया । परम्परा के विकास क्रम की यात्रा में अनेक शब्द अपना रूप बदलते रहते है । जैसे कि स्वर से 'सुर', कृष्ण से 'किशन', नृत्य से 'निरत' आदि... किन्तु शब्द की मूल ध्वनि सुरक्षित रहती है । 'सौष्ठव' की बलवान ध्वनि 'ठ' है । वह बाद में भी जीवित रही और दुहरी हो गई । 'सौष्ठव' शब्द पं. सारंगदेव के समय तक प्रचलित था 'संगीत रत्नाकर' में उसका प्रयोग नृत्य के अनुलक्ष में किया ।

सर मोनियर विलियम्स के अनुसार 'महाभारत' और काव्यशास्त्र के अनेक ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग बदलता से हुआ है । अत: यह स्पष्ठ रूप से कहा जा सकता है कि 'ठाठ' का मूल शब्द 'सौष्ठव' है और इस शब्द की परम्परा नाटयशास्त्र की रचना से पूर्व की है ।

रागों के, जो आज प्रचलित है, वर्गीकरण के लिए पं. भातखंडेजी ने केवल दस ठाठ अपनाए, जिनके अंतर्गत विभिन्न राग रखे गए है । ठाठ का उद्देश्य राग के शुध्ध और विकृत स्वर बताना मात्र है । चूँकि एक ठाठ के गठन के लिए सप्तक के सातों स्वरों का होना ज़रूरी है, अतः यह आवश्यक है कि ठाठ संपूर्ण हो, इसीलिए ठाठ–निर्मिति के लिए केवल आरोह पर्याप्त है ।

इस तरह अगर वर्षों में आए हुए सांगीतिक परिवर्तनों को यदि एक वाक्य में बताना चाहुँ तो संगीत में अनुशासन के आने के पश्चात् सर्वप्रथम –

- ग्राम – मूर्च्छना – जाति, फिर
- राग – रागिनियाँ और अंत में जो अब तक कायम है
- मेल –राग वर्गीकरण / ठाठ राग वर्गीकरण है ।

'पन्द्रहवीं' शताब्दी के अन्तिम काल में 'राग–तरंगिणी' के लेखक लोचन कविने रागों के वर्गीकरण की परम्परागत 'ग्राम और मूर्च्छना प्रणाली' का परिमार्जन करके मेल अथवा ठाठ को सामने रखा ।

लोचन कवि के लेखानुसार 'ठाठ' जब आया उस समय तक सोलह हज़ा राग थे, जिन्हें गोपियाँ कृष्ण के सामने गाया करती थी, किन्तु उनमें से ३६ राग प्रसिध्ध है । उन्हों ने इन सब बखेड़ो को समाप्त करके बारह ठाठ या मेल इस प्रकार कायम किए :–

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १. | भैरवी | २. | तोड़ी | ३. | गौरी | ४. | कर्णाट |
| ५. | केदार | ६. | ईमन | ७. | सारंग | ८. | मेघ |
| ९. | धनाश्री | १०. | पूर्वी | ११. | मुखारी | १२. | दीपक |

### 3.2.1 ठाठों में समावित रागों की सूचि

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **(१)** | **भैरवी :–** | १) | भैरवी | २) | नीलाम्बरी | | |
| **(२)** | **तोड़ी :–** | १) | तोड़ी | | | | |
| **(३)** | **गौरी :–** | १) | मालव | २) | श्री–गौरी | ३) | चैती गौरी |
| ४) | पहाड़ी गौरी | ५) | देशीतोड़ी | ६) | देशिकार | ७) | गौरी |

८) त्रिवण ९) मुलतानी १०) धनाश्री ११) बसंत

१२) रामकरी १३) गुर्जरी १४) बहुली १५) रेवा

१६) भटियार १७) षट् १८) पंचम १९) जयतश्री

२०) आसावरी २१) देवगांधार २२) सेंध–व्यासावरी २३) गुणकरी

**(४) कर्णाट :–** १) कानर २) वेगीश्वरीकानर ३) खंबावती

४) सोरट ५) परज ६) मारू ७) जैजैवंती

८) कुकुभा ९) कामोद १०) कामोदी ११) गौर

१२) मालव–कौशिक १३) हिंडोल १४) सुहाग्री १५) अड़ाणा

१६) कौरकानार १७) श्रीराग

**(५) केदार :–** १) केदारनाट २) आभीर ३) खंभावती

४) शंकराभरण ५) बिहागरा ६) हम्मीर ७) श्याम

८) छायानट ९) भूपाली १०) भीमपलासी ११) कौशिक

१२) मारू

**(६) ईमन :–** १) ईमन २) शुद्ध कल्याण ३) पूरिया ४) जयत कल्याण

**(७) सारंग :–** १) सारंग २) पटमंजरी ३) वृन्दावनी ४) सामंत

५) बइहंसक

**(८) मेघ :–** १) मेघमल्हार २) गोड़ सारंग ३) नाट ४) वेलावली

५) अलैया ६) सुद्र ७) देशी सुद्र ८) देशाख्य

९) शुद्ध नाट

**(९) धनाश्री :–** १) धनाश्री २) ललित

**(१०) पूर्वी :–** १) पूर्वी

**(११) मुखारी :–** १) मुखारी

**(१२) दीपक :–** १) दीपक [1]

---

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 20

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या ठाठ के बारे में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । ई. १६५५ के लगभग श्री हृदयनारायण ने लोचन के उक्त ठाठों के वर्गीकरण की पुष्टि करते हुए इस प्रकार व्याख्या की :-

(१) भैरवी :- शुद्ध स्वर सांशन्यासा च संपूर्ण षठ्जादि भैरवी भवेत् ।

(२) कर्नाट :- कर्नाटस्त्रयसंपूर्णाः षड्जादिः परिकीर्तितः ।

(३) मुखारि :- कोमल धैवत-ध कोमला मुखारी स्यात्पूर्णधादिक मूर्च्छना ।

(४) तोड़ी :- कोमलर्षभधैवतो तीव्रतरगांधारनिषादौ च ।

कोमलर्षमधा पूर्णा गांशा तोड़ी निरूप्यते ।

(५) केदार :- गांधार और निषाद

(६) यमन :- तीव्रतर गांधार, धैवत और निषाद ।

(७) मेघ :- कोम निशाद, कोमल गंधार

(८) दीपक :- तीव्रतम गांधार, मध्यम और निषाद । हृदयराम

गस्यतीव्रतमत्वेऽथ तथा तीव्रतमौ मनी ।

इहैवोत्प्रेक्षिता पूर्णा हृदयाधारिमोच्यते ॥

(९) गौरी (१०) सारंग (११) पूर्वी (१२) धनाश्री ।

सत्रहवीं शताब्दी में ठाठों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचार में आ गया था, जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत पारिजात' और 'राग विबोध' से स्पष्ट है । इसी काल में श्रीनिवास ने मेल की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति ठाठ से होती है । सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ठाठों की संख्या में विद्वानों का विशेष मतभेद रहा । जैसे कि - 'राग विबोध' के लेखक ने ठाठों की संख्या तेईस 'स्वरमेल - कलानिधि' के लेखक ने बीस तथा 'चतुर्दन्डि प्रकाशिका' के लेखक ने उन्नीस बताई है ।

दक्षिणी संगीत पद्धति के विद्वान लेखक पं. वैंकटमखी ने ठाठों की संख्या निश्चित करने के लिए गणित का सहारा लिया और पूर्ण रूप से हिसाब लगाकर ठाठों की कुल निश्चित संख्या बहत्तर (७२) बताई । इसके बारे में अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्हों ने कहा कि इस संख्या में संगीत के

जनक भगवान शंकर भी घटा-बढ़ी नहीं कर सकते । ७२ वैंकटमखी ने १९ ठाठ काम चलाऊ चुन लिए, जिनकी तालीम दी गई । वैंकटमखी की इस ठाठ संख्या को दक्षिणी संगीतज्ञों ने तो अपनाया किन्तु उत्तर विद्वानों पर उसका विशेष प्रभाव नहि पड़ा । फिर भी उत्तर भारतीय संगीतज्ञों ने कुल निर्धारित संख्या ७२ गलत नहीं मानी । किन्तु उत्तरी पद्धति के लिए अनुकूल न होने पर पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने वह ७२ ठाठों में केवल १० ठाठ चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया । जिसे उत्तर भारतीय संगीत विद्यार्थीयों ने अपनाकर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धति से अपना पीछा छुड़ाया । इस प्रकार यह ठाठ पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखंडे के समय में आकर वैद्यानिक रूप से स्थिर हो गई ।[1]

## 3.3 थाट वर्गीकरण

### 3.3.1 थाट-रचना-विधि

व्यंकटमुखीने एक सप्तक के १२ स्वरों स रे रे ग ग म म प प ध ध नि नी सं से तीव्र म को थोड़े समय के लिए निकाल दिया और १२ की संख्या पूरी करने के लिए तार से जोड़ दिया । इस तरह १२ स्वरों को दो बराबर भागों में बांट लिया । पहले भाग को पूर्वांग और दूसरे भाग को उतरांग कहा गया ।

| **पूर्वांग** | **उत्तरांग** |
|---|---|
| स रे रे ग ग म | प ध ध नी नी सं |

सप्तक में तार स जोड़ने से स्वरों की गिनती आठ हो गई । थाट रचना में सप्तक के दोनों भागों में चार-चार स्वर होने आवश्यक है । और उन चार-चार स्वकों में स और म दोनों स्वर पूर्वांग में और प और तार स होना जरूरी है ।

| | **पूर्वांग** | | **उत्तरांग** |
|---|---|---|---|
| (१) | से रे रे म | (१) | प ध ध सं |
| (२) | स रे ग म | (२) | प ध नि सं |

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदिनी भाग-२ / पृ. 13

| | | | |
|---|---|---|---|
| (३) | स रे ग म | (३) | प ध नी सं |
| (४) | स रे ग म | (४) | प ध नि सं |
| (५) | स रे ग म | (५) | प ध नि सं |
| (६) | स ग ग म | (६) | प नि नी सं |

इस तरह सप्तक के प्रत्येक भाग में छः-छः नए स्वर स्वरूप प्राप्त हुए । पूर्वांग के प्रत्येक स्वर समूह को बारी-बारी उत्तरांग के स्वर समूहों से मिलाया जाएगा अर्थात् पूर्वांग में केवल एक स्वर समूह लेना है और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से मिलाना है । जैसे-

| | **पूर्वांग** | **उत्तरांग** |
|---|---|---|
| (१) | स रे रे म | प ध ध सं |
| (२) | स रे रे म | प ध नि सं |
| (३) | स रे रे म | प ध नि सं |
| (४) | स रे रे म | प ध नि सं |
| (५) | स रे रे म | प ध नि सं |
| (६) | स रे रे म | प नि नि सं |

इस तरह पूर्वांग का तो पहला स्वर समूह लिया गया और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह के साथ जोड़ा गया । उसके पश्चात् इसी तरह पूर्वांग के दूसरे स्वर समूह को लिया जाएगा और उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह के साथ जोड़ा जाएगा । इस तरह छः स्वर समूहों को बार-बार जोड़कर छः x छः = ३६ थाट मिलेंगे । यह विधि तीव्र म स्वर लगाकर ही करनी है अर्थात् शुद्ध म की जगह तीव्र म रहेगा क्योंकि उसको पहले स्वर-समूह से निकाल दिया गया था । उदाहरण के लिए इसको देखा जा सकता है, जैसे-

| | **पूर्वांग** | **उत्तरांग** |
|---|---|---|
| (१) | स रे ग म | प ध ध सं |
| (२) | स रे ग म | प ध नि सं |

1. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 90

(३)  स रे ग म  प ध नि सं

(४)  स रे ग म  प ध नि सं

(५)  स रे ग म  प ध नि सं

(६)  स रे ग म  प नि नि सं

यहां उत्तरांग के स्वरों में कोई अन्तर नहीं आएगा । पूर्वांग में शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया गया है । इस तरह इन स्वर समूहों से भी ३६ थाट मिलेंगे । ३६ थाट शुद्ध मध्यम के साथ और ३६ थाट तीव्र मध्यम के साथ कुल मिलाकर ३६+३६=७२ थाट मिलेंगे । इस तरह व्यंकटमुखीने गणित द्वारा ७२ थाटों की रचना की । दक्षिण वालोंने ७२ थाटों में से कुल १९ ही चुने, जिसके अंतर्गत अपने रागों का वर्गीकरण किया ।(1)

## 3.4 पंडित व्यंकटमुखी के ७२ थाट

हम कर्णाटकी संगीत पद्धति के बारे में चर्चा करते है । कर्णाटकी पद्धति को ही दक्षिण हिन्दुस्तानी पद्धति मानी गई है ।

आन्ध्र, तामिलनाडु, कर्णाटक और केरल प्रदेशों में जो पद्धति प्रचलित है उसे दक्षिण अथवा कर्णाटकी पद्धति कहा जाता है । यह पद्धति का आधार ग्रंथ सारंगदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' है ।

भारतीय संगीत के विविध रागों की अभिव्यक्ति के लिए उनके अनेक स्वरूपों का निर्माण किया गया है । गान से शुरू करके वृत्त, छंदक्रान्ति और प्रबंध जैसे अनेक स्वरूप आनेवाले समय में प्रचलित हुए । प्रबंध स्वरूप का प्रथम उल्लेख मतंगजी के 'बृहद्देशी' में हुआ था । ऐसा प्रतीत होता है जैसे की १३वीं शताब्दी में यह व्यापक रूप से प्रचलित हो गया । कर्णाटकी संगीत पद्धति प्रणालियों की आधुनिक बंदिशों का अगर ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह साबित होता है कि प्राचीन प्रबंधों से इसका कोई ना कोई संबंध है । यह संगीत पद्धति में पल्लवि, अनुपल्लवि तथा चरणम् का संभव है जो की ध्रुव, अंतरा और आभोग के द्वारा विकास हुआ । ध्रुव को 'पल्लवि' और आभोग को 'चरणम्' के समान माना जाता है । अनुपल्लवि बंदिशों को एक भाग है, किंतु

1. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 91

'पाहि रामचंद्र' तथा 'त्यागराज' के अनेक दिव्य किर्तनों में अनुपल्लवि का उल्लेख किया नहि है । अनेक कृतियों में 'पल्लवि' और 'अनुपल्लवि' है, तो चरणम् नहीं है । जैसे की मुत्तु स्वामी दीक्षित की कृति ''श्री सरस्वती नमोस्तुते' । इस प्रकार के गीतों में पल्लवि के बाद 'समस्ति चरणम्' अनुपल्लवि और चरणम् ऐसे दोनों के लिए एक ही संपूर्ण अंग मानने में आया है ।

प्राचीन प्रबंधों में रचयिता, गायक और प्रबंध नायकों के नामों का उल्लेख मिलता है । जिसके बाद यह प्रणाली को अपनाई गई । यह उपयुक्त विचार बाद प्राचीन प्रबंध प्रणालि को आधुनिक संगीत के समांतर द्रष्टिकोण से देख सकते हैं । जैसे कि, 'शंकराभरणम्' में 'पाहि रामचंद्र' और 'श्रीरघुवीर दशरथे' जैसे दिव्यनाम–कीर्तन(त्यागराज) जिनमें केवल पल्लवि और चरणम् ही हैं । राग हंसध्वनि में 'वातापिगणपतिम् भजेहम' जैसी कृति, में 'पल्लवि', 'अनुपल्लवि' और 'चरणम्' का समावेश है । रीतिगौल राग में 'जननि निन्नू वीणा' जैसी कृति में'पल्लवि', 'अनुपल्लवि', 'चरणम्' तथा चिट्टै स्वर हैं । सांगीतिक रचनाओं के विकास में 'चरणम्' सबसे पहले प्रतीत होता है । उसके बाद पल्लवि तथा अनुपल्लवि, मध्यकाल साहित्य, 'चिट्टै स्वर–साहित्य, जति और सोकट्टू स्वर का प्रयोग और प्रचार हुआ। दीपनी–जाति–प्रबंध का राग भैरवी मं 'विरबोनी वरणम्' जैसा एक रूप हैं । भाविनी–जाति–प्रबंध का रूप हुसैनी राग में 'श्री रघुकुल निधिम् चितयाम्यहम्' जैसी कृति में मिलता है ।

- यह संगीत को मुख्यतः निबद्धरूप से गाया जाता है ।
- यह संगीत लय प्रधान तथा ताल प्रधान होता है ।
- यह पद्धति के गीत गाते समय केवल संगति, नेरावल और सरगम का प्रयोग होता है । आलाप, तान लेने में नही आते है ।
- सब गीत की लय मध्यलय ही रहेती है ।
- यह संगीत पद्धति का स्वरूप निबद्ध होने के कारण मृदंग पर तालादी बजाये जाते है ।
- संगीत में सौंदर्य उत्पन्न करने की द्रष्टि यह कीया जाता है और अगर ठेका बंध भी करदे तो इस से कोई क्षति नहीं होती ।
- राग पद्धति में 'रागम्', 'तालम्', 'पल्लवि' तथा 'किर्तन' या 'कृति' का सुंदर रूप से प्रदर्शन होता है ।

इस पद्धति में आधुनिक समय के जो महत्वपूर्ण स्वरूप उपलब्ध है वो कुछ इस प्रकार है ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| (१) | अलंकारम् | (२) | लक्षणगीत | (३) | स्वरजाति |
| (४) | आलापनम् | (५) | ध्रुतकलाकृति | (६) | मध्यम कलाकृति |
| (७) | रागम् तानम् पल्लवी | (८) | तिल्लाना | (९) | पदम् तथा जावली |
| (१०) | भजन | | | | |

पंडित व्यंकटमुखी ने सप्तक के शुद्ध व विकृत १२ स्वरों में से गणित के अनुसार ७२ थाटों की रचना की । १७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लगभग १६४० इ.स. में उन्होंने चतुर्दण्डिप्रकाशिका नामक एक संगीत ग्रंथ की रचना की । इस ग्रंथ में पं. वैंकटमुखिने सप्तक के शुद्ध व विकृत १२ स्वरों में से उत्पन्न किये हुए अपने ७२ थाटों के सिद्धांतों को प्रचलित और प्रसिद्ध किया । ७२ थाटों के रचेयता पं. वैंकटमुखिने थाट राग वर्गीकरण के लिए केवल १६ थाटों का ही प्रयोग किया और दक्षिणी पद्धति के सभी रागों का वर्गीकरण केवल १६ थाटों में ही कीया ।[1]

### 3.4.1 ७२ थाट के नाम

पं. वेंकटकुखी के ७२ बहतर थाट (मेल) इस प्रकार है :

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | कनकांबरी | २. | फेनद्युति | ३. | सामवराली |
| ४. | भानुमति | ५. | मनोरंजन | ६. | तनुकीर्ति |
| ७. | सेनाग्रणी | ८. | तोड़ी | ९. | भिन्नषड्ज |
| १०. | नटाभरण | ११. | कोकिलस्वर | १२. | रूपवती |
| १३. | हेजुज्जी | १४. | बसंतभैरवी | १५. | मायामालवगौल |
| १६. | वेगवाहिनी | १७. | छायावती | १८. | शुद्धमालवी |
| १९. | झंकारभ्रमरी | २०. | रीतिगौल | २१. | किरणावली |
| २२. | श्रीराग | २३. | गौरीबेलावली | २४. | वीरवसंत |
| २५. | शरावती | २६. | तरंगिणी | २७. | सौरसेना |

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदिनी पार्ट–२ / पृ. 1

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| २८. | केदारगौल | २९. | शंकराभरण | ३०. | नागाभरण |
| ३१. | कलावती | ३२. | चूड़ामणी | ३३. | गंगातरंगिणी |
| ३४. | छायानट | ३५. | देशाक्षी | ३६. | चलनाट |
| ३७. | सर्गांधिनी | ३८. | जगमोहिनी | ३९. | वरालिका |
| ४०. | नभोमणि | ४१. | कुम्भिनी | ४२. | रविक्रिया |
| ४३. | गीर्वाणी | ४४. | भवानी | ४५. | शैवपंतुवराली |
| ४६. | स्तवराज | ४७. | सौबीरा | ४८. | जीवंतिका |
| ४९. | धवलाग | ५०. | नामदेशी | ५१. | रामक्रिया |
| ५२. | राममनोहर | ५३. | गमक क्रिया | ५४. | वंशावती |
| ५५. | शामला | ५६. | चामरा | ५७. | समद्युति |
| ५८. | सिंहरव | ५९. | धामवती | ६०. | नैषध |
| ६१. | कुन्तल | ६२. | रतिप्रिया | ६३. | गीतप्रिया |
| ६४. | भूषावती | ६५. | शान्तकल्याण | ६६. | चतुरंगिणी |
| ६७. | संतानमंजरी | ६८. | ज्योति | ६९. | धौतपंचम |
| ७०. | नासमणि | ७१. | कुसुमाकर | ७२. | रसमंजरी [1] |

### 3.4.2 कर्नाटक पद्धति के ७२ मेल

कर्नाटक पद्धति के ७२ बहतर थाट (मेल) इस प्रकार है :

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १. | कनकांगी | रि१ | ग१ | म१ | ध१ | नि१ |
| २. | रत्नांगी | रि१ | ग१ | म१ | ध१ | नि२ |
| ३. | गानमूर्ति | रि१ | ग१ | म१ | ध१ | नि३ |
| ४. | वनस्पति | रि१ | ग१ | म१ | ध२ | नि२ |
| ५. | मानवती | रि१ | ग१ | म१ | ध२ | नि३ |
| ६. | तानरूपी | रि२ | ग२ | म२ | ध३ | नि३ |

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदि / पृ. 1

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ७. | सेनावती | रि१ | ग२ | म१ | ध१ | नि१ |
| ८. | हनुमत्तोड़ी | रि१ | ग२ | म१ | ध१ | नि२ |
| ९. | धेनुक | रि१ | ग२ | म१ | ध१ | नि३ |
| १०. | नाटकप्रिय | रि१ | ग२ | म१ | ध२ | नि२ |
| ११. | कोकिलप्रिय | रि१ | ग२ | म१ | ध२ | नि३ |
| १२. | रूपवती | रि१ | ग२ | म१ | ध३ | नि३ |
| १३. | गायकप्रिय | रि१ | ग३ | म१ | ध१ | नि१ |
| १४. | बकुलाभरण | रि१ | ग३ | म२ | ध१ | नि२ |
| १५. | मायामालवगौड़ | रि१ | ग३ | म१ | ध१ | नि३ |
| १६. | चक्रवाक | रि२ | ग३ | म२ | ध२ | नि२ |
| १७. | सूर्यकान्त | रि१ | ग३ | म१ | ध२ | नि३ |
| १८. | हाटकांबरी | रि१ | ग३ | म१ | ध३ | नि३ |
| १९. | झंकारध्वनि | रि२ | ग२ | म१ | ध१ | नि१ |
| २०. | नटभैरवी | रि२ | ग२ | म१ | ध१ | नि२ |
| २१. | कीरवाणी | रि२ | ग२ | म१ | ध१ | नि३ |
| २२. | खरहरप्रिय | रि२ | ग२ | म१ | ध२ | नि२ |
| २३. | गौरीमनोहरी | रि२ | ग२ | म१ | ध२ | नि३ |
| २४. | वरूणप्रिय | रि२ | ग२ | म१ | ध३ | नि३ |
| २५. | माररंजनी | रि२ | ग३ | म१ | ध१ | नि१ |
| २६. | चारूकेशी | रि२ | ग३ | म१ | ध१ | नि२ |
| २७. | सरसांगी | रि२ | ग३ | म१ | ध२ | नि३ |
| २८. | हरिकांभोजी | रि२ | ग३ | म१ | ध२ | नि२ |
| २९. | धीरशंकराभरण | रि२ | ग३ | म१ | ध२ | नि३ |
| ३०. | नागानंदिनी | रि२ | ग३ | म१ | ध३ | नि३ |
| ३१. | यागप्रिय | रि३ | ग३ | म२ | ध१ | नि१ |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ३२. | रागवर्द्धनी | रि३ | ग३ | म१ | ध१ | नि२ |
| ३३. | गांगेयभूषणी | रि३ | ग३ | म१ | ध१ | नि३ |
| ३४. | वागधीश्वरी | रि३ | ग३ | म१ | ध२ | नि२ |
| ३५. | शूलिनी | रि३ | ग३ | म१ | ध२ | नि३ |
| ३६. | चलनाट | रि३ | ग३ | म२ | ध१ | नि३ |
| ३७. | सालग | रि१ | ग१ | म२ | ध१ | नि१ |
| ३८. | जलार्जंव | रि१ | ग१ | म२ | ध१ | नि२ |
| ३९. | झालकवराली | रि१ | ग१ | म२ | ध१ | नि३ |
| ४०. | नवनीत | रि१ | ग१ | म२ | ध२ | नि२ |
| ४१. | पावनी | रि१ | ग१ | म२ | ध२ | नि३ |
| ४२. | रघुप्रिय | रि१ | ग१ | म२ | ध३ | नि३ |
| ४३. | गवांभोधि | रि१ | ग२ | म२ | ध१ | नि२ |
| ४४. | भवप्रिय | रि१ | ग२ | म२ | ध१ | नि२ |
| ४५. | शुभपन्तुवराली | रि१ | ग२ | म२ | ध१ | नि३ |
| ४६. | षड्विधमार्गिणी | रि१ | ग२ | म२ | ध२ | नि२ |
| ४७. | सुवर्णांगी | रि१ | ग२ | म२ | ध२ | नि३ |
| ४८. | दिव्यमणी | रि१ | ग२ | म२ | ध३ | नि३ |
| ४९. | धवलाम्बरी | रि१ | ग३ | म२ | ध१ | नि१ |
| ५०. | नामनारायणी | रि१ | ग३ | म२ | ध१ | नि२ |
| ५१. | कामवर्द्धनी | रि१ | ग३ | म२ | ध१ | नि३ |
| ५२. | रामप्रिय | रि१ | ग३ | म२ | ध२ | नि२ |
| ५३. | गमनश्रम | रि१ | ग३ | म२ | ध२ | नि३ |
| ५४. | विश्वम्भर | रि१ | ग३ | म२ | ध३ | नि३ |
| ५५. | श्यामलांगी | रि२ | ग२ | म२ | ध१ | नि१ |
| ५६. | षण्मुखप्रिय | रि२ | ग२ | म२ | ध१ | नि२ |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ५७. | सिंहेन्द्रमध्यम | रि२ | ग२ | म२ | ध१ | नि३ |
| ५८. | हेमवती | रि२ | ग२ | म२ | ध२ | नि२ |
| ५९. | धर्मवती | रि२ | ग२ | म२ | ध२ | नि३ |
| ६०. | नीतिमती | रि२ | ग२ | म१ | ध३ | नि३ |
| ६१. | कान्तामणि | रि२ | ग३ | म२ | ध१ | नि१ |
| ६२. | ऋषभप्रिय | रि२ | ग३ | म२ | ध१ | नि२ |
| ६३. | लतांगी | रि२ | ग३ | म२ | ध१ | नि३ |
| ६४. | वाचस्पति | रि२ | ग३ | म२ | ध२ | नि२ |
| ६५. | मेचकल्याणी | रि२ | ग३ | म२ | ध२ | नि३ |
| ६६. | चित्राम्बरी | रि२ | ग३ | म२ | ध३ | नि३ |
| ६७. | सुचरित्र | रि३ | ग३ | म२ | ध१ | नि१ |
| ६८. | ज्योतिस्वरूपिणी | रि३ | ग३ | म२ | ध१ | नि२ |
| ६९. | धातुवर्धनी | रि३ | ग३ | म१ | ध१ | नि३ |
| ७०. | नासिकाभूषणी | रि३ | ग३ | म२ | ध२ | नि२ |
| ७१. | कोसल | रि३ | ग३ | म२ | ध२ | नि३ |
| ७२. | रसिकप्रिय | रि३ | ग३ | म२ | ध३ | नि३ [(1)] |

## 3.5 ३२ थाट

संगीतकारों ने रागों के स्वरूप की दो तरह से कल्पना की है । (१) देवात्मक (२) नादात्मक । देवात्मक स्वरूप यानी कोई एक राग पुरुष रूप में है या स्त्री रूप में । यदि पुरुष रूप में हो तो उसकी प्रकृति कैसी है, उसकी स्त्रियाँ (पत्नियाँ) कौन–कौन हैं, उनके रूप, रंग, आकृति आदि किस प्रकार के हैं, इन सब बातों का वर्णन करना चाहिए । यदि वह राग स्त्री रूप में हो, तो उसकी मनोवृति किस प्रकार की है, किस तरह की प्रवृत्ति करती है, किस प्रकार की नायिका है उसके पुत्र, रंग, रूप, वेशभूषा और देश किस प्रकार के हैं और दूसरे राग के साथ कैसे तुलना की जा सके ये

1. रागकोष / संगीत कार्यालय– हाथरस / पृ. 85 - 86

सब दर्शाना यह देवात्मक स्वरूप माना जाता है । कुछ राग इतने स्वरों (५, ६ या ७) से बनता है, उनमें से कुछ स्वर वादी है, कुछ स्वर संवादी है । उसके आरोह–अवरोह, चलन आदि बताना यह राग का नादात्मक या स्वरात्मक स्वरूप है ।

मार्गी संगीत और देशी संगीत ऐसे दो प्रकार का संगीत देखने को मिलता है । तदनुसार राग भी दो प्रकार के होते हैं । मार्ग राग और देशी राग । मार्ग राग एक से चार स्वरों तक के गिने जाते हैं । देशी रागों की रचना पांच, छ, या सात स्वरों के मिश्रण से बनती है और स्वरों की संख्या पर से राग की जाति, निश्चित की जाती है ।

पंडित व्यंकटमुखीने ७२ मेल का वर्गीकरण किया है । पंडितजीने ७२ जनकमेल में से जो राग उत्पन्न होते है उन रागों के नाम याद रखना भी मुश्किल था और उनको सीखना तो उससे भी दुष्कर कार्य था । गणित की दृष्टिकोण से एक थाट में से ४८४ अन्य राग उत्पन्न होने से ७२ थाट में से ३४,८४८ राग उत्पन्न हो सकते है । एक अनुमान के अनुसार पुस्तकों में ३००–४०० से ज्यादा राग नहीं हो सकते । क्योंकि वर्तमान समय में महान संगीतकार भी ज्यादा से ज्यादा २००–३०० रागों के अन्दर गायन–वादन करते है । वर्तमान समय में इतने रागों की जानकारी रखना और उसको गाना असंभव है । इसी कारण २०० रागों के गायन– वादन के लिए इतने सारे थाटों का होना संभव नहीं है । इसी कारण पंडित वैंकटमुखिने प्रथम से ही दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए ७२ थाट में से से १९ राग वर्गीकरण के लिये निश्चित किये थे । परन्तु उतर हिन्दुस्तान की शास्त्रीय संगीत पद्धति दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति से अलग है । इसी कारण हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के कितने जनकमेल होने चाहिए इस विषय में विद्वानों द्वारा किये हुए चिंतन मनन के अन्त में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति के लिए ३२ (बतीस) थाटों (मेल) को पसंद किया गया । राग लक्षण नामक प्राचीन संगीत ग्रंथ में दर्शाए हुए ३२ मेलों के नाम निम्न अनुसार हैं ।

(१) हनुमंत तोड़ी – सा री ग म प ध नि सां

(२) धेनुका – सा री ग म प ध नि सां

(३) नाटक प्रिय – सा री ग म प ध नि सां

(४) कोकिल प्रिय – सा री ग म प ध नि सां

| | | | |
|---|---|---|---|
| (५) | बकुलाभरण | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (६) | माया माधव | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (७) | चक्रबाक | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (८) | सूर्यकान्त | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (९) | नटभैरवी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१०) | किरवाणी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (११) | खरहरप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१२) | गौरी मना | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१३) | चारुकेशी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१४) | सरसांगी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१५) | हरिकाम्भोजी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१६) | धीरशंकरा | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१७) | भावप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१८) | शुभ पंतुब | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (१९) | षड्बिधमा | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२०) | सुवर्णांगी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२१) | नाम नारा | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२२) | कामवर्धनी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२३) | रामप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२४) | गमनप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२५) | षड्मुखप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२६) | सिंहेद्रम | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२७) | हेमवती | – | सा री ग म प ध नि सां |

| | | | |
|---|---|---|---|
| (२८) | धर्मवती | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (२९) | ऋषभप्रिय | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (३०) | लतांगी | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (३१) | वाचस्पति | – | सा री ग म प ध नि सां |
| (३२) | मेघकल्याणी | – | सा री ग म प ध नि सां [1] |

## 3.6 पंडित विष्णु नारायण भातखंडेजी के १० थाट वर्गीकरण

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में पं. व्यंकटमुखी के ७२ थाट में से केवल १० थाट के आधार पर राग गाया व बजाया जाता है । उन सबका वर्गीकरण इन्हीं १० थाटों में किया गया है ।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में राग की रंजकता के गुण को प्राधान्य दिया गया है । ७२ जनक मेलों के संक्षिप्त रूप के लिए कुछ विद्वानों ने ३२ मेल तय किये । परंतु उससे विद्वानों को संतोष न हुआ और यह माना गया कि ३२ मेल से कम संख्या में मेल होने चाहिए । यह विचार संगीत संबंधित समाज में चलता था, ऐसे समय में पंडित विष्णु नारायण भातखंडेजी भी संगीत का अभ्यास कर रहे थे । उन्होंने ३२ थाटों में से केवल १० थाट उठाकर संगीतशास्त्र को नया स्वरूप दिया । इस से उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत को नया रूप मिला । पं. भातखंडेजी द्वारा तैयार किये गये १० जनक मेल है । आधुनिक युग में १० थाटों का स्वीकार किया गया है । दक्षिण भारतीय संगीत में इस थाट पद्धति का स्वीकार अभी तक नहीं किया ।

पं. विष्णु नारायण भातखंडेजी सुचित जनक मेल एवं जन्य रागों के वर्गीकरण अनुसार थाटों से उत्पन्न हुए रागों से कुछ राग वर्तमान युग में प्रचलित है, जब की कुछ प्रचलित है, जब की कुछ अप्रचलित है । अत: उसमें दोनों तरह के रागों का समावेश होता है ।

पं. भातखंडेजी द्वारा तैयार किया गया जनक मेल और जन्य रागों का वर्गीकरण :

**यमन, बिलावल और खमाजी; भैरव, पूरवि, मारव, काफ़ी ।**

**आसा, भैरवि, तोड़ी, बखाने; दशमित ठाठ 'चतुर' गुनि माने ॥**

1. राजन, रेनु / रागलक्षण / पृ. 79

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) | कल्याण (मेचकल्याणी) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (२) | बिलावल (धीरशंकरभरण) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (३) | खमाज (हरिकाम्भोजी) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (४) | भैरव (मायामालवगौड़) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (५) | पूर्वी (कामवर्धिनी) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (६) | मारवा (गमनप्रिया) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (७) | काफी (खरहरप्रिया) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (८) | आसावरी (नटभैरवी) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (९) | भैरवी (हनुमंत तोड़ी) | – | सा रे ग म प ध नि सां । |
| (१०) | तोड़ी (शुभपंतुवराली) | – | सा रे ग म प ध नि सां ।[1] |

इन दस ठाठों को भी तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

- **पहला वर्ग :**

  कल्याण<br>बिलावल<br>खमाज — शुद्ध 'रे, ग, ध' वाले रागों के लिए

- **दुसरा वर्ग :**

  भैरव<br>पूर्वी<br>मारवा — कोमल 'रे' तथा शुद्ध 'ग, नि' वाले रागों के लिए

- **तीसरा वर्ग :**

  काफी<br>भैरवी<br>आसावरी<br>तोड़ी — कोमल 'ग', 'नि' वाले रागों के लिए

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदि पार्ट–२ / पृ. 31

इस प्रकार इन दस ठाठों के अन्तर्गत हमारे प्रत्येक समय के राग आ सकते हैं । इसीलिए भातखंडे जी ने केवल दस ठाठ ग्रहण किए और शेष ठाठों को विदेशी तथा अपने लिए अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया ।

**(१) कल्याण थाट (मेल) के जन्य राग**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | यमन | २. | यमन कल्याण | ३. | शुद्ध कल्याण |
| ४. | सावनी कल्याणी | ५. | जेत कल्याण | ६. | श्याम कल्याण |
| ७. | पुरिया कल्याण | ८. | हमीर | ९. | छायानट |
| १०. | केदार | ११. | मालश्री | १२. | हिन्डोल |
| १३. | चंद्रकांत | १४. | कामोद | १५. | भूपाली |
| १६. | ऐरावत | १७. | गौड़सारंग | १८. | वैजंति [1] |

**(२) बिलावल थाट (मेल) के जन्य राग**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | बिलावल | २. | दुर्गा | ३. | मांड़ |
| ४. | पहाड़ी | ५. | बिहाग | ६. | यमनी बिलावल |
| ७. | अल्हैया बिलावल | ८. | हंसध्वनि | ९. | नट बिलावल |
| १०. | देवगीरी | ११. | देशकार | १२. | नट |
| १३. | हेम कल्याण | १४. | लच्छा शाख | १५. | कुकुभ |
| १६. | सरपरदा | १७. | शंकरा | १८. | जलधर केदार |
| १९. | मलुहा केदार | २०. | गुणकली | २१. | दीपक |
| २२. | जनरंजनी | २३. | आरभी | २४. | चित्तमोहनी |
| २५. | कुमुद | २६. | कंकणा | २७. | चक्रधर |
| २८. | शुक्ल बिलावल | | | | |

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 120

### (३) खमाज थाट (मेल) के जन्य राग

| | | |
|---|---|---|
| १. खमाज | २. गारा | ३. देश |
| ४. झिंझोटी | ५. दुर्गा(द्वितीय) | ६. सोरठी |
| ७. जयजयवन्ती | ८. तिलक–कामोद | ९. खंबावती |
| १०. रागेश्री | ११. तिलंग | १२. नट मल्हार |
| १३. नारायणी | १४. नागस्वरावली | १५. प्रतापवराली |
| १६. काम्बोजी या काम्बीध | | |

### (४) भैरव थाट (मेल) के जन्य राग

| | | |
|---|---|---|
| १. भैरव | २. रामकली | ३. शिव भैरव |
| ४. गुणकली | ५. झिलफ | ६. गौरी |
| ७. बिभास | ८. मेघरंजनी | ९. प्रभात भैरव |
| १०. ललित पंचम | ११. कालिंगडा | १२. जोगिया |
| १३. आहिर भैरव | १४. बंगाल भैरव | १५. आनंद भैरव |
| १६. सौराष्ट्र टंक | १७. देवरंजनी | १८. जगमोहनी |
| १९. गुमकांबोधी | २०. कमल मनोहरी [1] | |

### (५) पूर्वी थाट (मेल) के जन्य राग

| | | |
|---|---|---|
| १. पूर्वी | २. दीपक | ३. गौरी |
| ४. परज | ५. बसंत | ६. रेवा |
| ७. श्री | ८. टंकी | ९. मालवी |
| १०. बिभास | ११. जेताश्री | १२. त्रिवेणी |
| १३. पूरीयाधनाश्री | १४. मनोहर या भोगवसंत | |

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 121

## (६) मारवा थाट (मेल) के जन्य राग

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १. | मारवा | २. | जेत | ३. | सोहनी | ४. | ललित |
| ५. | साजगिरि | ६. | भंखार | ७. | बिभास | ८. | पूरीया |
| ९. | भटीयार | १०. | पंचम | ११. | बराटी | १२. | मालीगौरा |
| १३. | रत्नदीप | | | | | | |

## (७) काफी थाट (मेल) के जन्य राग

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | काफी | २. | धानी | ३. | सैंधवी |
| ४. | भीमपलासी | ५. | धनाश्री | ६. | पिलु |
| ७ | बहार–बागेश्री | ८. | हंस कंकणी | ९. | पटदीप |
| १०. | सूहा | ११. | सुघराई | १२. | शहाना |
| १३. | देशाख(देवशाख) | १४. | नायकी | १५. | मानवी |
| १६. | वृंदावनी सारंग | १७. | शुद्ध सारंग | १८. | बड़हंस सारंग |
| १९. | मियांकी सारंग | २०. | सामंत सारंग | २१. | मध्यमादि सारंग |
| २२. | लंकादहन सारंग | २३. | शुद्ध मल्हार | २४. | मियां मल्हार |
| २५. | सूर मल्हार | २६. | गौड़ मल्हार | २७. | नट मल्हार |
| २८. | जयंत सेन | २९. | मनोहरी | ३०. | धुलिया मल्हार |
| ३१. | पटमंजरी | ३२. | गुमकाम्बोधी | ३३. | मीराबाई की मल्हार |
| ३४. | ऋतहंस | ३५. | रामदासी मल्हार | ३६. | आभोगी |
| ३७. | चरजु की मल्हार (1) | | | | |

## (८) आसावरी थाट (मेल) के जन्य राग

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | आसावरी | २. | गांधारी | ३. | दरबारी |
| ४. | देशी | ५. | झिलफ | ६. | अड़ाणा |
| ७. | षट्(खट) | ८. | सिंधुभैरवी | ९. | जोनपुरी |
| १०. | कौशिक | ११. | चाप घंटारव | | |

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 122

**(९) भैरवी थाट (मेल) के जन्य राग**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | भैरवी | २. | सिंहरव | ३. | मालकौंस |
| ४. | बिलासखानी तोड़ी | ५. | आनंद भैरवी | ६. | भूपाली तोड़ी |
| ७. | देव गांधारी तोड़ी | | | | |

**(१०) तोड़ी थाट (मेल) के जन्य राग**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | तोड़ी (मियां की तोड़ी) | २. | मुलतानी | ३. | गुर्जरी तोडी |
| ४. | लाचारी तोडी | ५. | बहादुरी तोडी | ६. | देशी तोडी [1] |

## 3.7 थाट के नियम

१. थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए यदि वह आप ही सम्पूर्ण नहीं होगा अर्थात् उस स्वर समूह में ७ स्वर ही नहीं प्रयोग किए जाएंगे तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे माना जा सकता है ।

२. थाट में सात स्वरों को क्रमानुसार होना चाहिए जैसे स के बाद रे और रे के बाद ग इत्यादि ।

३. थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता ।

४. थाट को गाया–बजाया नहीं जाता इसलिए इसमें रंजकता का होना आवश्यक नहीं ।

५. थाट में एक स्वर के दो रूप एक साथ (शुद्ध और विकृत) नहीं हो सकते क्योंकि ऐसा करने से किसी और स्वर को वर्जित करना पड़ेगा, जोकि थाट के नियम के विरुद्ध है । किन्तु दक्षिणी पद्धति में ऐसा कर लिया जाता है । एक स्वर के दो रूप एक साथ प्रयोग करने के साथ ही उनका थाट सम्पूर्ण रहता है क्योंकि उन्होंने एक स्वर के दो या दो से ज्यादा नाम दिए हैं । उदाहरण के लिए अगर किसी थाट में दोनों ऋषभ अर्थात् शुद्ध के या चतुश्रुतिक रे प्रयोग किए जाएंगे तो पहले रे ऋषभ ही रहेगा और दूसरे को शुद्ध गंधार कहा जाएगा । इस प्रकार राग की दृष्टि में हो जाता है परन्तु असल में नहीं होता क्योंकि नाम बदलने से स्वर–स्थान नहीं बदलते ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 123

६. थाट का नाम उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रखा गया है, जैसे – नि रे ग म प ध नि सं ऐसे स्वर समूह को कल्याण थाट कहा गया है क्योंकि कल्याण में तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार और रागों के नाम जिनके स्वर समूह थाट के स्वर समूहों के अनुसार थे, अर्थात् विशेष विशेषताएं थीं, उन्हें उन रागों का नाम दिया गया है । जैसे –खमाज, काफी, भैरव, भैरवी आदि । जिन रागों के नाम के आधार पर थाट का नामकरण हुआ, उनको आश्रय राग कहा गया । थाटों की संख्या कुल १० मानी गई है । इसलिए आश्रय राग भी १० ही हैं ।[1]

## 3.8 मेल वर्गीकरण

विभिन्न वर्गीकरण प्रणालियों के मूल में निहित यही मुख्य ध्येय है । ग्राम–राग, देशी– राग वर्गीकरण के पश्चात् जो अनेक वर्गीकरण पद्धतियाँ एक साथ प्रचलित हुईं, उनमें मेलराग वर्गीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसका कारण है कि यह अपने आप में विभिन्न नवीन स्वरावलियों को समाहित करने की अद्‌भुत क्षमता रखती है । समकालीन राग–रागिनी वर्गीकरण यद्यपि कितना भी श्रद्धेय हुआ तथापि तुलनात्मक दृष्टि से थाट–राग वर्गीकरण ने इसे बहुत पीछे छोड़ दिया । यदि देखें तो दोनों के मूल आधार एक–से प्रतीत होते हैं । लेकिन विकास की दृष्टि से और विस्तार के अनुसार थाट–राग वर्गीकरण को यदि अपरिमित कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं । इसकी निर्माण प्रक्रिया गणित सापेक्ष हो जाने के कारण तो इसके विस्तार के विषय में कोई अन्तिम सीमा निश्चित बन ही नहीं सकती ।

संगीत रत्नाकर के बाद के सम्बन्ध में जो नवीन गतिविधियाँ आरम्भ हुईं, उनके अनुसार तीन वर्गीकरण प्रणालियाँ एक साथ आरम्भ हो गईं –

१. राग–रागिनी वर्गीकरण

२. मेलराग वर्गीकरण

३. रागांग वर्गीकरण

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदि / पृ. 2

ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाए तो तीनों अपने-अपने ढंग से एक साथ विकासोन्मुख होती रहीं । लेकिन अब भी अन्तिम रूप से यह कहा जा सकता है कि नवीन स्वरावलियों को अपने में समाहित करने की क्षमता मेलराग वर्गीकरण में सबसे अधिक है ।

अत्यन्त वैज्ञानिक, गहन तथा सांगोपांग रीति से विकसित भारतीय राग परम्परा में वर्गीकरण सम्बन्धी अपनी कितनी क्षमता है इसको ध्यान में रखकर ऐसी आशंकाओं में निहित सार का निर्णायक हल निकाला जा सकता है । ईरानी प्रभाव की आशंका का सबसे पहला कारण है - संख्यागत समानता और उसमें एक-दो ईरानी सम्बोधनों का समावेश । ईरानी संगीत में मेल का पर्याय मुकाम है और ये मुकाम बारह हैं । इनमें से कई ईरान के आसपास या दूर-समीप के क्षेत्रों के नाम पर हैं - १. रास्त, २. ईराक, ३. हिजाज़, ४. रहावी, ५. हुसेनी, ६. कोचक, ७. बुजुर्ग, ८. इस्फ़हान, ९. ज़गूलः, १०. उश्शाक, ११. नवा, १२. बूसलीक ।

हृदयनारायण ने भी यद्यपि अपना एक नवीन मेल जोड़कर इस संख्या को तेरह कर दिया तथापि इसके मूल में लोचन वाली संख्या की कार्यरत है । संख्या का समान हो जाना उनसे प्रभावित होने के तुल्य नहीं माना जा सकता । मेलराग वर्गीकरण का ऐतिहासिक विवेचन यह बताता है कि इसके आरम्भकर्ता विद्यारण्य ने अपने मेलों की संख्या पन्द्रह बताई है जो उनकी मौलिकता का प्रतीक है । उन्होंने सम्पूर्ण उपलब्ध रागों को सम्मुख रखकर गहन चिन्तन के पश्चात् उनकी प्रकृति और विकृति को सम्मुख रखते हुए पचास रागों को पन्द्रह श्रेणियों में विभाजित किया जिन्हें मेल की संज्ञा दी । वास्तविकता यह है कि मेलराग वर्गीकरण की सैद्धांतिक प्रक्रिया राग-रागिनी वर्गीकरण की परिवारमूलक धारणा का अत्यन्त सुनियोजित स्वरूप कहा जा सकता है । सच तो यह है कि इस वर्गीकरण के संचालकों ने राग-रागिनी परम्परा से अपने वर्गीकरण के लिए अनुप्रेरणा प्राप्त की ।

इस वर्गीकरण को मुख्य रूप से तीन संज्ञाओं से सम्बोधित किया है - मेलराग, थाट राग और संस्थान राग । इन तीनों में अभिधार्थमूलक कोई विशेष समानता प्राप्त नहीं होती । संस्थान, मेल और थाट तीनों में 'संस्थान' ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग केवल मात्र लोचन ने किया है । वह बात दूसरी है कि हृदयनारायण देव ने 'संस्थान' और 'मेल' में अर्थगत साम्य मानते हुए लोचन के बारह के बारह संस्थान रूपों को न केवल यथावत् ग्रहण कर लिया अपितु उन्हें मेल संज्ञा से

सम्बोधित किया । मेल का भाव है – एकरूपता के आधार पर किये गए अनेक वर्ग । मेल के अनुसार अभिधार्थ है – मिलाना । जिसका भाव यह ग्रहण किया जा सकता है – सम स्वरावलियों के वर्ग निर्धारित करना । संस्थान का अभिधार्थ और भावार्थ दोनों इसी के बोधक हैं । सम+स्थान अर्थात् एक समान स्वर रूप । यही भाव इससे भी लिया जा सकता है । इसके अनुसार दोनों पर्याय हो सकते हैं । थाट का ठाठ अपभ्रंश रूप है । मुकाम का भी वही अर्थ है जो संस्थान का है और मूलाधार ग्राम का है । इन तीनों अर्थगत समानता के कारण ही मेल पर मुकाम के प्रभाव की आशंकाएं उत्पन्न हुई हों तो कोई आश्चर्य नहीं है ।[1]

संस्थान के प्रयोग के विषय में मुख्य रूप से चार चिन्तकों की धारणाएं विचारणीय हैं – १. आ.बृहस्पति, २. चैतन्य देसाई, ३. तुलसीराम देवांगन, ४. इन्द्राणी चक्रवर्ती । आ. बृहस्पति 'संस्थान' को 'मुकाम' का अनुवाद मानते हैं । ''लोचन ने 'ठाठ' के लिए 'संस्थान' शब्द का प्रयोग किया है । इस शब्द का प्रयोग रामामात्य, पुण्डरीक, और श्रीकण्ठ ने नहीं किया । 'मेलन' शब्द का प्रयोग कल्लिनाथ ने भी किया है । अतः लोचन कल्लिनाथ की अपेक्षा भी पूर्ववर्ती हैं क्योंकि 'संस्थान' शब्द 'मुकाम' का ठीक–ठीक अनुवाद है ।''

जातियों द्वारा ठाठ सिद्ध होते हैं, परन्तु उनसे भैरव, तोड़ी, मारवा आदि कुछ थाटों की प्राप्ति सरलता से नहीं होती, अतः कई विद्वान मानते हैं कि भैरवादि ठाठ ईरान से हिन्दुस्तानी संगीत में प्रविष्ठ हुए । परन्तु भैरव तोड़ी ठाठों के स्वरों में लोकगीत मिलते हैं अतः इन ठाठों को लोकसंगीत से शास्त्रीय संगीत में लिए गए होंगे । यदि कुछ वाद्य–धुनें शक, हूण, ईरानी आदि जातियों से भी ली गई होंगी, तो वह भी असंभावित एवं आश्चर्यकारक नहीं है ।

इन्द्राणी चक्रवर्ती का विवेचन शब्दों के व्युत्पत्तिमूलक अथवा परम्परागत प्रयोग से काफी दूर है । वह तो मेल या थाट की स्वर–प्रक्रिया से वीणा आदि वाद्यों के प्रयोग पर अधिक ध्यान दे रही है । संस्थान, मेल और थाट तीनों को समानार्थक रूप में प्रयोग किया है । अपनी कृति स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान में वह पृष्ठ ४६७ पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती हैं :

1. आचार्य बृहस्पति / मुसलमान और भारतीय संगीत / पृ. 44

''मेल पद्धति के साथ ही संस्थान का मतवाद चल पड़ा था और लोचन ने इसके आधार पर राग वर्गीकरण किया, सोमनाथ ने 'संस्थान' शब्द का उल्लेख अवश्य किया किन्तु अन्य किसी ने भी 'संस्थान' का प्रयोग नहीं किया । रागों के वर्गीकरण में उत्तर तथा दक्षिण दोनों के लक्ष्यकारों ने 'मेल' को ही आधार माना । सोमनाथ ने 'थाट इति भाषायाम' कहकर 'थाट' शब्द का उल्लेख मात्र किया है । 'मेल' के आधार पर दक्षिण के समस्त ग्रंथकारों ने राग वर्गीकरण किया तथा वर्तमान में वे 'मेल' शब्द का ही प्रयोग करते हैं । श्रीनिवास के पश्चात् १७वीं- १८वीं शताब्दी से उत्तर के शास्त्रकारों ने 'मेल' के स्थान पर 'थाट' शब्द का ग्रहण किया, यद्यपि भाषा में थाट या 'ठाठ' ही प्रचलित था ।[(1)]

भारतीय संगीत की विश्वजनीन अपूर्व क्षमता है जिसके कारण वह अन्य सभी प्राचीन प्रणालियों से अपना साम्य प्रदर्शित कर लेता है । शब्दों के व्यूत्पत्तिमूलक अर्थ पर ध्यान देना इतना आवश्यक नहीं है जितना उसके समभावमूलक प्रयोग को ध्यान में रखना । कई शताब्दियों से संस्थान, मेल और थाट एक ही अर्थ का बोध कराते आ रहे हैं । अत: इसे उचित मान लेना ही विषय को जटिल होने से बचा सकता है । हमें तो यह दृष्टिकोण लेकर चलना चाहिए कि 'थाट', 'मेल' या 'संस्थान' राग वर्गीकरण एक प्रणाली है जिसके अनुसार देशी रागों को विभिन्न वर्गों में समुचित रीति से विभाजित करने का प्रयास लगभग तभी से चल रहा है जबसे याष्टिक, कोहल आदि मतंगपूर्व आचार्यों ने इत रागों के अस्तित्व को स्वीकार करके अपने शिष्यों को इसकी शिक्षा देनी आरम्भ कर दी । पुन: देशी रागों का विभाजन करने के अलग-अलग प्रयास होने लगे । मेलराग वर्गीकरण ऐसे ही प्रयासों में से एक है जो किसी भी अन्य वर्गीकरण से कम प्राचीन और सुव्यवस्थित नहीं हैं ।

के. वासुदेव शास्त्री, आ. बृहस्पति आदि विद्वानों के अनुसार मेलराग वर्गीकरण का आरम्भ विद्यारण्य ने किया । यह १५वीं शताब्दी के विद्वान माने जाते हैं । हाल ही में तुलसीराम देवांगन ने विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मेलराग वर्गीकरण का सम्बन्ध आन्जनेय मत से है । इस सम्बन्ध में उन्हों ने जो भी साक्ष्य उद्धृत किये हैं वे निस्सन्देह विश्वसनीय हैं । विशेषरूप से 'संगीत पारिजात' के शब्द तो इस तथ्य की पूर्ण पुष्टि करते हैं –

1. देसाई, चेतन / भारत भाष्यम भाग- २ / पृ. 39

**मेलास्त्रिधाः मताः (३३१)**

**षाडवा औडुवाः षडजं बिना मेला न ते मताः ।**

**शुद्धत्वविकृताभ्यामिति मेला मयोदितः ॥३३२॥**

**तत्र ये च प्रसिद्धाः स्यूरंजका ये विशेषतः ।**

**लक्षणानि ब्रुवे तेषां सम्मत्या च हनूमतः ॥३३३॥**

संगीत पारिजात, हाथरस संस्करण

अतः प्रमाणित हो जाता है कि यह वर्गीकरण प्रक्रिया बहुत पुरानी है । ऐतिहासिक क्रम इतने लब्मे समय के पश्चात् क्यों शुरू हुआ, आवश्यकतानुसार इस पर अवश्य विचार किया जा सकता है । देशी रागों के स्वररूप, श्रुति प्रयोग, विकृत स्वर व्यवस्था और मेल, मेल और मूर्च्छना – इन सभी विषयों पर भी पृथक्–पृथक् विचार किया जा सकता है क्योंकि इनके आधार पर मेल वर्गीकरण की सही पहचान का बोध प्राप्त किया जा सकता है । इस वर्गीकरण के समर्थक विभिन्न विद्वानों ने तद्विषयक किन तथ्यों को ध्यान में रखकर अपने– अपने मेलों के रूप तथा उनके अनुसार रागों को वर्गीकरण करने का दृष्टिकोण बनाया है, इन सब पर चिन्तन करना भी प्रासंगिक है ।

शोधकर्तानें शोध करने पर यह पाया कि, विद्वानों ने उत्तरी और दक्षिणी शास्त्रकारों के मेलकर्ताओं का ऐतिहासिक क्रम पृथक्– पृथक् प्रस्तुत किया है । इसके अतिरिक्त मेलराग वर्गीकरण का आरम्भ चाहे भारत के किसी भी कोने से हुआ हो किन्तु इससे यह बात तो निश्चित–सी हो जाति है कि इस वर्गीकरण पर इस महान और विशाल देश के क्षेत्रवाद की किसी भी सीमा ने बाधित नहीं किया ।

### 3.9 एक थाट से 484 रागों की उत्पत्ति

रागों की विभिन्न जातियां (जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है) के आधार पर ४८४ रागों की रचना हो सकती है । हर जाति से रागों की रचना की संख्या भिन्न–भिन्न होती है। जैसे–

### १) सम्पूर्ण–सम्पूर्ण

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण जाति के रागों से केवल एक ही राग बन सकता है क्योंकि इसके आरोह–अवरोह दोनों में ७–७ स्वर प्रयोग किए जाते हैं ।

आरोह – सा रे ग म प ध नि सं ।

अवरोह – सं नि ध प म ग रे सा ।

## २) सम्पूर्ण षाडव

सम्पूर्ण षाडव जाति के आरोह में तो ७ स्वर लगते हैं परन्तु अवरोह में सा को छोड़कर अन्य ६ स्वरों को वर्जित करने से ६ राग बन सकते हैं जैसे –

| | | |
|---|---|---|
| १. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सा ध प म ग रे स | ) (नि वर्जित) |
| २. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सां नि प म ग रे स | ) (ध वर्जित) |
| ३. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सां नि ध म ग रे सा | ) (प वर्जित) |
| ४. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सां नि ध प ग रे स | ) (म वर्जित) |
| ५. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सां नि ध प म रे सा | ) (ग वर्जित) |
| ६. | स रे ग म प ध नि | ) १ राग |
| | सं नि ध प म ग स | ) (रे वर्जित) [(1)] |

इस तरह इस वर्ग के जाति से ६ रागों की उत्पत्ति हो सकती है । इसका इस तरह भी वर्णन किया जा सकता है ।

| | आरोह | अवरोह | |
|---|---|---|---|
| १. | सा रे ग म प ध नि | x ध प म ग रे स) | (नि वर्जित) |
| २. | सा रे ग म प ध नि | नि x प म ग रे स) | (ध वर्जित) |
| ३. | सा रे ग म प ध नि | नि ध x म ग रे स) | (प वर्जित) |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 109

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४. | सा रे ग म प ध नि | नि ध प X ग रे स) | (म वर्जित) |
| ५. | सा रे ग म प ध नि | नि ध प म X रे स) | (ग वर्जित) |
| ६. | सा रे ग म प ध नि | नि ध प म ग X स) | (रे वर्जित) |

## ३) सम्पूर्ण – औडव

सम्पूर्ण औडव जाति के रागों के आरोह में तो ७ स्वर ही लगेंगे परन्तु अवरोह में स को छोड़कर २ स्वरों को बारी–बारी छोड़ा जाएगा । जिससे १५ राग बनेंगे । जैसे –

| | आरोह | अवरोह | |
|---|---|---|---|
| १. | स रे ग म प ध नि | X X प म ग रे स | (नि ध वर्जित) |
| २. | स रे ग म प ध नि | X ध X म ग रे स | (नि प वर्जित) |
| ३. | स रे ग म प ध नि | X ध प X ग रे स | (नि म वर्जित) |
| ४. | स रे ग म प ध नि | X ध प म X रे स | (नि ग वर्जित) |
| ५. | स रे ग म प ध नि | X ध प म ग X स | (नि रे वर्जित) |
| ६. | स रे ग म प ध नि | नि X X म ग रे स | (ध प वर्जित) |
| ७. | स रे ग म प ध नि | नि X प X ग रे स | (ध म वर्जित) |
| ८. | स रे ग म प ध नि | नि X प म X रे स | (ध ग वर्जित) |
| ९. | स रे ग म प ध नि | नि X प म ग X स | (ध रे वर्जित) |
| १०. | स रे ग म प ध नि | नि ध X X ग रे स | (प म वर्जित) |
| ११. | स रे ग म प ध नि | नि ध X म X रे स | (प ग वर्जित) |
| १२. | स रे ग म प ध नि | नि ध X म ग X स | (प रे वर्जित) |
| १३. | स रे ग म प ध नि | नि ध प X X रे स | (म ग वर्जित) |
| १४. | स रे ग म प ध नि | नि ध प X ग X स | (म रे वर्जित) |
| १५. | स रे ग म प ध नि | नि ध प म X X स | (ग रे वर्जित)[1] |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 110

## ४) षाडव–सम्पूर्ण

इस वर्ग की जाति से ६ राग बन सकते हैं । इस जाति के रागों के आरोंह में तो ६ स्वर लगेंगे अर्थात् स के अतिरिक्त प्रत्येक स्वर की बारी–बारी वर्जित किया जाएगा परन्तु अवरोह सम्पूर्ण ही होगा, जैसे–

| | | |
|---|---|---|
| १. | स रे ग म प ध | |
| | नि ध प म ग रे | ) नि वर्जित |
| २. | स रे ग म प नि | |
| | नि ध प म ग रे | ) ध वर्जित |
| ३. | स रे ग म ध नि | |
| | नि ध प म ग रे | ) प वर्जित |
| ४. | स रे ग प ध नि | |
| | नि ध प म ग रे | ) म वर्जित |
| ५. | स रे म प ध नि | |
| | नि ध प म ग रे | ) ग वर्जित |
| ६. | स ग म प ध नि | |
| | नि ध प म ग रे | ) रे वर्जित |

दूसरे ढंग के अनुसार –

| | | आरोह | अवरोह |
|---|---|---|---|
| नि वर्जित | १. | सा रे ग म प ध X | नि ध प म ग रे स |
| ध वर्जित | २. | सा रे ग म प X नि | नि ध प म ग रे स |
| प वर्जित | ३. | सा रे ग म X ध नि | नि ध प म ग रे स |
| म वर्जित | ४. | सा रे ग X प ध नि | नि ध प म ग रे स |
| ग वर्जित | ५. | सा रे X म प ध नि | नि ध प म ग रे स |
| रे वर्जित | ६. | सा X ग म प ध नि | नि ध प म ग रे स [1] |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 110

## ५) षाडव–षाडव

इस वर्ग की जाति से कुल ३६ राग बनेंगे अर्थात् स को छोड़कर बारी–बारी आरोह और अवरोह दोनों में एक–एक स्वर वर्जित किया जाएगा । इस प्रकार ६ राग बनेंगे ।

परन्तु इन ६ रागों के अतिरिक्त और भी राग बन सकते हैं क्योंकि यह जरूरी नहीं कि आरोह में भी वही स्वर वर्जित हो जो अवरोह में हो । उदाहरण के लिए अगर आरोह में नि वर्जित है तथा अवरोह में म वर्जित भी हो सकता है । इस तरह ६ राग आरोह द्वारा और ६ राग अवरोह द्वारा ६ X ६ = ३६ राग षाडव जाति के बन सकते है ।

| | आरोह | अवरोह |
|---|---|---|
| नि वर्जित १. | सा रे ग म प ध X | X ध प म ग रे स |
| ध वर्जित २. | सा रे ग म प X नि | नि X प म ग रे स |
| प वर्जित ३. | सा रे ग म X ध नि | नि ध X म ग रे स |
| म वर्जित ४. | सा रे ग X प ध नि | नि ध प X ग रे स |
| ग वर्जित ५. | सा रे X म प ध नि | नि ध प म X रे स |
| रे वर्जित ६. | सा X ग म प ध नि | नि ध प म ग X स |

## ६) षाडव–औडव

षाडव–औडव जाति के कुल ९० राग बनेंगे । इसमें स को छोड़कर एक–एक स्वर आरोह में वर्जित किया जाएगा और अवरोह में स को छोड़कर दो–दो स्वर वर्जित होंगे तो १६ औडव अवरोह बनेंगे । इसलिए आरोह–अवरोह दोनों से १५ X ६ = ९० राग बनेंगे ।(1)

| | आरोह | अवरोह | |
|---|---|---|---|
| (नि वर्जित) | १. सा रे ग म प ध X | X X प म ग रे सा | (नि, ध वर्जित) |
| (ध वर्जित) | २. सा रे ग म प X नि | X ध X म ग रे सा | (नि, प वर्जित) |
| (प वर्जित) | ३. सा रे ग म X ध नि | X ध प X ग रे सा | (नि, म वर्जित) |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 111

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (म वर्जित) | ४. सा रे ग x प ध नि | x ध प म x रे सा | (नि, ग वर्जित) |
| (ग वर्जित) | ५. सा रे x म प ध नि | x ध प म ग x सा | (नि, रे वर्जित) |
| (रे वर्जित) | ६. सा x ग म प ध नि | नि x x म ग रे सा | (ध, प वर्जित) |
| | | नि x प x ग रे सा | (ध, म वर्जित) |
| | | नि x प म x रे सा | (ध, ग वर्जित) |
| | | नि ध x म ग x सा | (प, रे वर्जित) |
| | | नि ध x x ग रे सा | (प, म वर्जित) |
| | | नि ध x म x रे सा | (प, ग वर्जित) |
| | | नि ध x म ग x सा | (प, रे वर्जित) |
| | | नि ध प x x रे सा | (म, ग वर्जित) |
| | | नि ध प x ग x सा | (म, रे वर्जित) |
| | | नि ध प म x x सा | (ग, रे वर्जित) |

## ७) औडव–सम्पूर्ण

इस जाति के कुल १५ राग बनेंगे । इसके आरोह में सा को छोड़कर स्वर प्रत्येक बार वर्जित करने से १५ औडव अवरोह बनेंगे । आरोह सम्पूर्ण होने के कारण उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं आएगा । इस प्रकार इस जाति के अनुसार कुल १५ राग ही बनेंगे ।(1)

| | | आरोह | अवरोह |
|---|---|---|---|
| (ध, नि वर्जित) | १. | सा रे ग म प x x | नि ध प म ग रे सा |
| (प, नि वर्जित) | २. | सा रे ग म x ध x | नि ध प म ग रे सा |
| (म, नि वर्जित) | ३. | सा रे ग x प ध x | नि ध प म ग रे सा |
| (ग, नि वर्जित) | ४. | सा रे x म प ध x | नि ध प म ग रे सा |
| (रे, नि वर्जित) | ५. | सा x ग म प ध x | नि ध प म ग रे सा |
| (प, ध वर्जित) | ६. | सा रे ग म x x नि | नि ध प म ग रे सा |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 112

| | | | |
|---|---|---|---|
| (म, ध वर्जित) | ७. | सा रे ग X प X नि | नि ध प म ग रे सा |
| (ग, ध वर्जित) | ८. | सा रे X म प X नि | नि ध प म ग रे सा |
| (रे, ध वर्जित) | ९. | सा X ग म प X नि | नि ध प म ग रे सा |
| (म, प वर्जित) | १०. | सा रे ग X X ध नि | नि ध प म ग रे सा |
| (ग, प वर्जित) | ११. | सा रे X म X ध नि | नि ध प म ग रे सा |
| (रे, प वर्जित) | १२. | सा X ग म X ध नि | नि ध प म ग रे सा |
| (ग, म वर्जित) | १३. | सा रे X X प ध नि | नि ध प म ग रे सा |
| (रे, म वर्जित) | १४. | सा X ग X प ध नि | नि ध प म ग रे सा |
| (रे, ग वर्जित) | १५. | सा X X म प ध नि | नि ध प म ग रे सा |

### ८) **औडव–षाडव**

इस जाति के कुल राग ९० बनेंगे । औडव जाति के आरोह अनुसार इसमें स को छोड़कर २ स्वर बारी–बारी वर्जित किए जाएंगे । इस प्रकार कुल १५ औडव आरोह मिलेंगे । अवरोह में स को छोड़कर एक–एक स्वर बारी–बारी वर्जित किया जाएगा जिससे कुल ६ स्वरों को ६ बार वर्जित करने से ६ षाडव–अवरोह बनेंगे । १५ औडव अवरोहों में ६ षाडव अवरोहों के साथ १५X ६=९० राग बनेंगे ।[1]

| | | आरोह | अवरोह | |
|---|---|---|---|---|
| ध, नि वर्जित | १. | सा रे ग म प X X | X ध प म ग रे स | (नि वर्जित) |
| प, नि वर्जित | २. | सा रे ग म X ध X | नि X प म ग रे स | (ध वर्जित) |
| म, नि वर्जित | ३. | सा रे ग X प ध X | नि ध X म ग रे स | (प वर्जित) |
| ग, नि वर्जित | ४. | सा रे X म प ध X | नि ध प X ग रे स | (म वर्जित) |
| रे, नि वर्जित | ५. | सा X ग म प ध X | नि ध प म X रे स | (ग वर्जित) |
| प, ध वर्जित | ६. | सा रे ग म X X नि | नि ध प म ग X स | (रे वर्जित) |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 112

| | | |
|---|---|---|
| म, ध वर्जित | ७. | सा रे ग x प x नि |
| ग, ध वर्जित | ८. | सा रे x म प x नि |
| रे, ध वर्जित | ९. | सा x ग म प x नि |
| म, प वर्जित | १०. | सा रे ग x x ध नि |
| ग, प वर्जित | ११. | सा रे x म x ध नि |
| रे, प वर्जित | १२. | सा x ग म x ध नि |
| ग, म वर्जित | १३. | सा रे x x प ध नि |
| रे, म वर्जित | १४. | सा x ग x प ध नि |
| रे, ग वर्जित | १५. | सा x x म प ध नि |

## ९) औडव-औडव

इस जाति के कुल २२५ राग बनेंगे । इसके आरोह-अवरोह दोनों में २-२ स्वर वर्जित किए जाएंगे । इस तरह हमें १५ औडव जाति के आरोह के १५ ही अवरोह प्राप्त होंगे जिससे १५x१५= २२५ राग प्राप्त होंगे ।

| | आरोह | अवरोह | |
|---|---|---|---|
| १. | सा रे ग म प x x | x x प म ग रे स | (नि ध वर्जित) |
| २. | सा रे ग म x ध x | x ध x म ग रे स | (नि प वर्जित) |
| ३. | सा रे ग x प ध x | x ध प x ग रे स | (नि म वर्जित) |
| ४. | सा रे x म प ध x | x ध प म x रे स | (नि ग वर्जित) |
| ५. | सा x ग म प ध x | x ध प म ग x स | (नि रे वर्जित) |
| ६. | सा रे ग म x x नि | नि x x म ग रे स | (ध प वर्जित) |
| ७. | सा रे ग x प x नि | नि x प x ग रे स | (ध म वर्जित) |
| ८. | सा रे x म प x नि | नि x प म x रे स | (ध ग वर्जित) |

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 113

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९. | सा x ग म प x नि | नि x प म ग x स | (ध रे वर्जित) |
| १०. | सा रे ग x प x नि | नि x प x ग रे स | (ध म वर्जित) |
| ११. | सा रे x म x ध नि | नि ध x म x रे स | (प ग वर्जित) |
| १२. | सा x ग म x ध नि | नि ध x म ग x स | (प रे वर्जित) |
| १३. | सा रे x x प ध नि | नि ध प x x रे स | (म ग वर्जित) |
| १४. | सा x ग x प ध नि | नि ध प x ग x स | (म रे वर्जित) |
| १५. | सा x x म प ध नि | नि ध प म x x स | (ग रे वर्जित) |

**संक्षेप वर्णन**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | सम्पूर्ण–सम्पूर्ण | = | १ | राग |
| २. | सम्पूर्ण–षाडव | = | ६ | राग |
| ३. | सम्पूर्ण–औडव | = | १५ | राग |
| ४. | षाडव–सम्पूर्ण | = | ६ | राग |
| ५. | षाडव–षाडव | = | ३६ | राग |
| ६. | षाडव–औडव | = | ९० | राग |
| ७. | औडव–सम्पूर्ण | = | १५ | राग |
| ८. | औडव–षाडव | = | ९० | राग |
| ९. | औडव–औडव | = | २२५ | राग |
| | कुल | = | ४८४ | राग |

इस तरह एक थाट से ४८४ राग बनते हैं ।

1. कौर, भगवंत कौर / परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 114

## 3.10 राग और राग उत्पत्ति

### 3.10.1 राग

भारतीय संगीत में राग शब्द की विचारपूर्वक योजना की गई है । राग का मतलब अनुराग, जिसमें प्रीत उत्पन्न होती है । जो मन का रंजन करे, वह 'राग' । मन का रंजन करने की शक्ति होना राग का प्रथम अनिवार्य गुण बना रहता है । राग का अर्थ 'प्रेम' । जीवन के तमाम तत्त्व स्नेह में और स्नेहजनित रस में समाया हुआ है और इस रस का सर्जन करने में राग का सबसे ज्यादा योगदान है । राग का मतलब रति, स्नेह । मन का रंजन करे, सो राग है । प्रेम का पर्यायवाची शब्द है 'राग' । 'राग' का शाब्दिक अर्थ 'मोह' और 'लाल' होता है । परंतु संगीत के क्षेत्र में राग के बारे में सोचने का प्रयत्न करें, तो निम्न अनुसार मिल सके ।

संगीत में बाईस श्रुतियाँ या सूक्ष्म स्वर हैं । उनमें से सात श्रुतियाँ सात स्वर के रूप में स्थापित हुई हैं । जिन्हे षड्ज, रिषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद (सा, रे, ग, म, प, ध, नि,) के रूप में पहचानी जाती है । निश्चित आंदोलन संख्यावाली ये श्रुतियाँ सुनने में मधुर लगती है, जिन्हें स्वर कहा जाता है । जब किसी एक स्वर को लगाया जाय, तब साधना के स्वरूप में या रियाझ के हिस्से के रूप में बराबर है, किंतु यदि श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाय तो किसी एक स्वर को श्रोता अमुक समय तक सुन सकते हैं, बाद में वे ऊब जाते हैं । इसलिये इन स्वरों को गूंथना जरूरी बन गया और उसके फल स्वरूप राग अस्तित्व में आया ।

अमुक भावनाओं को स्वर द्वारा व्यक्त करके उसका असर उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु उसके लिये स्वरों में कैसी कैसी शक्तियाँ हैं और कैसे कैसे स्वर संयोजनों से कैसा प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है, यह समझने में आ जाय तभी निश्चित प्रकार की भावनाएँ व्यक्त हो सकती हैं ।

नाद द्वारा रसपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करनेवाली स्वरसृष्टि को 'राग' कहा जा सकता है । सात स्वरों में से अमुक संवादी स्वरों को लेकर, उन सब स्वरों की एक मधुर माला बनाकर, उसका ही विस्तार किस तरह करना यह सब राग विद्या या कला का विषय है ।

भारत की चारों दिशाओं के अनेक विद्वानों और कुशल गायकों के प्रयत्न से अनेक राग-रागिनियाँ अस्तित्व में आये है । इस विषय में मतभेद होने की संभावना है, किन्तु अनेक मतभेद होने पर भी रागशास्त्र के सर्व सामान्य नियमों के लिये कोई मतभेद नहीं है । राग की सर्वमान्य व्याख्या इस प्रकार है ।

**॥ रञ्जयन्ति मनांसीति रागाः ॥** [(1)]

'शास्त्र के नियमों के आधार पर सप्त स्वरों में से किसी भी स्वर में से उत्पन्न स्वरसमूह, जिसमें कम से कम पाँच स्वर हों और उससे रंजकता उत्पन्न की जा सकती हो, उसे 'राग' कहा जाता है ।'

### 3.10.2 हिन्दुस्तानी संगीत में 'राग' की उत्पत्ति और विकास

'राग' शब्द मूलभूत रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसकी उत्पत्ति 'रञ्ज भावे धज्' इस तरह हुई है । इस से स्पष्ट होता है कि रंजकता से ही राग है, परंतु राग शब्द के अन्य कुछ अर्थ भी हैं । (१) वर्ण, रंग, रंजक वस्तु, (२) लाल रंग, लाल रंग की लाख, प्रेम, प्रणयोन्माद, स्नेह, प्रेम विषयक अथवा काम भावना, लाली, भावना, संकेत, सहानुभूति, हित, हेत, हर्ष, आनंद, क्रोध, रोष, प्रियता, सौंदर्य, संगीत के राग, खेद, शोक, लालच, इर्षा इत्यादि भी हैं । इस तरह देखा जाय, तो 'राग' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । परंतु 'राग' शब्द का अधिक प्रयोग महामुनि भरतने अपने नाट्यशास्त्र में एवं महाकवि कालिदासने अपने महाकाव्यों में किया हैं । राग शब्द पहले पहल पारिभाषिक शब्द के रूप में मातंग के 'बृहद् देशी' में इस्तेमाल हुआ हैं । राग गीति दर्शाते समय मातंगने कश्यप द्वारा दी गई व्याख्या का उल्लेख किया है ।

राग की व्याख्या के मूल अर्थ को यथावत रखकर विविध विद्वानोंने उसे अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया हैं । कल्लीनाथने कश्यप के मतानुसार ही राग की व्याख्या का स्वीकार किया है । जो राग स्थायी, आरोह, अवरोह और संचारी ये चार वर्ण रखता है, वह राग है और तदनुसार कल्लीनाथने लिखा है ।

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 3

**चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनो भवेत् ।**

**स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृताः ॥[(1)]**

अर्थात् –जिसके द्वारा त्रिलोक में बसते हुए जीव मात्र के हृदय का रंजन होता है, वह राग है ।

'संगीत समयसार' में राग की व्याख्या इस प्रकार दी है :

**स्वर वर्ण विशिष्टेन ध्वनिभेदन वा पुनः ।**

**रज्यते येन सच्चितं स रागः सम्मतः सताम् ॥[(2)]**

अर्थात् – स्वर और वर्ण विशेष अथवा ध्वनिभेद से जिसके द्वारा मानवों के चित्त का रंजन होता है, वह राग है ।

राणा कुम्भा, पंडित व्यंकटमुखी, पं. भातखंडेजी सहित प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों तथा तमाम ग्रंथ रचयिताओंने राग की व्याख्या संबंधी संमति साधी है । वे मानते हैं कि ध्वनि की एक ऐसी विशिष्ट स्वररचना, जो स्वरवर्णों से बंधी हो, उसे 'राग' कहा जाता है । दश लक्षणों से युक्त गीत राग है । इसकी स्पष्टता करते हुए कल्लीनाथने लिखा है,

**योऽ पौ ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विशेषितः ।**

**रञ्जको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः ॥**

अर्थात् – ध्वनि की ऐसी रचना, जो स्वर वर्ण के साथ जाति के ग्रह–न्यास, आदि दश लक्षणों से युक्त हो एवं जो मानवमन का अनुरंजन करे, वह राग है । ऋग्वेद, सामवेद, रामायण, भरत नाट्यशास्त्र, पुराणों, हरिवंश पुराण, कालिदास के काव्य, नारदीय शिक्षा आदि ग्रंथों में 'राग' का उल्लेख पाया जाता है ।

राग की उत्पत्ति के संदर्भ में महामुनि नारद कृत 'संगीत मकरंद' तथा पंडित दामोदर लिखित 'संगीत दर्पण' (सन १६२५) में राग की उत्पत्ति शिव और शक्ति के योग द्वारा हुई होने की बात लिखी गई है । तदनुसार भगवान शिव के पंचमुख में से पांच राग जन्मे और छठा राग देवी पार्वती के मुख में से प्रकट हुआ । महादेवने जब नृत्य शुरू किया, तब उनके साधो वक्त्र मुख में से

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 2

2. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 2

श्री राग, वामदेव मुख में से बसंत, अघोर मुख में से भैरव, तत्पुरुष मुख में से पंचम, ईशान मुख में से मेघ और नृत्य के समय देवी पार्वतीजी के मुख में से नट्टनारायण राग की उत्पत्ति हुई थी । इसके अतिरिक्त १५वीं शताब्दी के शुभंकर रचित 'संगीत दामोदर' में राग की उत्पत्ति की दूसरी मान्यता दर्शायी गई है । शुभंकर के मतानुसार भगवान श्रीकृष्ण और गोपियों द्वारा राग की उत्पत्ति हुई है ।

**गोपीभिर्गीतमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ ।**

**तेन जातानि रागाणां सहस्त्राणि च षोड़शः ॥**

**रागेषु तेषु षट्त्रिंशद्रागाः जगति विश्रुताः ।**

**कालक्रमेण तथापि हास एव च दृष्यते ॥**[1]

अर्थात् – सोलह हजार रागों की उत्पत्ति गोपियों और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण द्वारा हुई है । कालक्रम के अनुसार ये राग लुप्त होते गये । उनमें से केवल ३६ राग प्रचार में रहे । 'राग दर्पण' में कौन सा राग, किस के द्वारा गाया गया उसका विवरण किया गया है । लंकाध्वनि नामक राग सर्वप्रथम हनुमानजीने गाया था । लंकाध्वनि, बिलावल और सोरठी राग को मिलाने सें 'शंकरमणि' राग की रचना होती है । यह राग महादेव को छोड़ कोई नहीं जानता । खंबावती महामुनि भरतने, कला– प्रवीण राग नारदने, कलाहल राग भरतने, रेवावती राग कामदेव की पत्नी रतिने और अभेरी नामक राग का सर्व प्रथम गायन भगवान श्रीकृष्णने किया होने की नोंध 'राग दर्पण' में की गई है ।

### 3.10.3 संगीतोत्पत्ति का कारण

कुछ विद्वानों का मत है कि संगीत का जन्म 'ओम' शब्द के गर्भ से हुआ है । 'ओम्' शब्द एकाक्षर होकर भी 'अ, उ, म' इन तीन ध्वनियों से निर्मित हुआ है । तीनों अक्षरों के संयोग से इसकी ध्वनि एक ही अक्षर के समान होती है । इसीलिये इसे एकाक्षर कहा जाता है । ओम के तीनों अक्षर अ, उ और म तीन शक्तियों के द्योतक हैं । 'अ' – अत्वत्रि शक्ति द्योतक सृष्टि कर्ता ब्रह्मा । उ' – धारक पालक रक्षण अर्थात स्थिति शक्ति का प्रतीक विष्णु । 'म' – महेश शक्ति का द्योतक है । तीनों शक्तियों का पूंज ही त्रिमून्ति परमेश्वर है ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 95

ओम वेद का बीज मंत्र है । इसके विषय में मनु कहते हैं कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से अ, उ, म ये तीन अक्षर लेकर प्रणव ओम बना है । श्रुति स्मृति के अनुसार यह प्रणव परमात्मा का अनुपम नाम है ।

**अन्ये च बहवः पूर्वे ये संगीत विशारदः ।**

– संगीत रत्नाकर, प्रथम अध्याय

वेद में संक्षेप सें ब्रह्म पद का वर्णन करते समय ओम रूप से ही उस पद का वर्णन किया गया है ।

**सर्वे वेदा यत्पदमाम नन्ति**

**तपांसि सर्वाणि च यद विदन्ति ।**

**यदिच्छंत्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति**

**तत्रे पदे संग्रहेण ब्रवीभि ॥ १५ ॥**

सफल वेद तथा सम्पूर्ण तपस्या में लक्ष्य रूप से जिस पद का वर्णन है, और जिस पद की इच्छा कर के मुमुक्षुगण ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करते हैं उस पद का संक्षिप्त नाम ओम् है ।

महर्षियों ने वेदांग शिक्षा शास्त्र द्वारा यह भलि भाँति सिद्ध कर दिया है कि प्रणव में तीनगुणों की तीन शक्तियाँ भरी पड़ी है उसी कारण प्रणव, हस्व, दिर्ध और प्लुत तीन स्वरों की सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता । पुनः गार्धव उपवेद संबंधि शिक्षाओं में भलिभाँति वर्णित है कि षडज आदि सातो स्वर एक मात्र ओमकार के अंत विभाग है । शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओम के गर्भ से हुई है । प्रथम स्वर प्रस्तुत हुआ तद उपरांत शब्द निकले । पहले मनुष्य को स्वर सुनाई दिये उसके बाद शब्द सुनाई दिय मुखसे उच्चारण होने योग प्रणव, यद्यपि अवलोकि प्रणवनाद का प्रतिक शब्द है तथापि वह केवल लौकिक संबंध में अविष्कृत नहीं हुआ है । वास्तव में ओम् शब्द ही संगीत के जन्म का उपकरण है । समस्त कलाएँ ओम के विशाल गर्भ से अविर्भुत है । जो ओम की साधना कर पाते हैं वे ही वास्तव में संगीत का यथार्थ रूप समझ पाते है इसमें लय ताल स्वर सभी कुछ हैं ।[1]

---

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 23

### 3.10.4 राग की शास्त्रोक्त व्याख्या

**योऽषौ ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विशेषितः ।**

**रंजको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः ॥**

– बृहद्देशी

अर्थात् – षड्ज आदि स्वरों और स्थायी आदि वर्णों से विभूषित अथवा अलंकृत ध्वनि विशेष जो मनुष्य के चित्त को रंजन करनेवाला हो, उसे 'राग' कहा जाता है ।

'रागविबोध' में पंडित सोमनाथ की दी हुई स्पष्टता अनुसार,

**स्वर वर्ण भूषितो यो ध्वनि,**

**भेदो रञ्जकः स राग इति ।**

– राग विबोध

अर्थात् – स्वर वर्ण से विभूषित हुआ स्वर कि जिसके द्वारा ध्वनि के भेद का ज्ञान होता है और जो रंजन करनेवाला होता है, उसे 'राग' कहा जाता है ।

**स्वर वर्णविशिष्टेन ध्वनि भेदेन वा पुनः ।**

**रज्यते येन सच्चितं स रागः सम्मतः सताम् ॥**

– बृहद्देशी

अर्थात् जो विशिष्ट स्वरवर्ण से या ध्वनिभेद से मनुष्य के मन का रंजन कर सके वह 'राग' है ।

आधुनिक विद्वान पं. भातखंडेजी के कहने के मुताबिक स्वर अथवा वर्ण से सुशोभित एक विशिष्ट स्वर समुदाय, कि जो मनुष्य के हृदय का रंजन करता है, उसे 'राग' कहा जाता है ।

मध्यकालीन ग्रंथकार श्री कण्ठ के मतानुसार, 'जिसमें सब वर्णों की उपस्थिति हो ऐसा सुंदर ध्वनि विशेष, कि जो मनुष्य के मन का रंजन करता है, वह 'राग' है ।' [1]

**रम्यध्वनि विशेषस्तु सर्ववर्ण विराजितः ।**

**सरागो गीयते तज्ज्ञैर्जगन्मानस रंजकः ॥**

– रस कौमुदी

शुभंकर के मतानुसार, 'तीन लोक में विद्यमान प्राणियों के हृदय का जिससे रंजन होता है, उसे भरत सहित ऋषिमुनिओंने 'राग' कहा है ।'

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 96

**यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्तिनाम् ।**

**ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ॥**

– भरत कोष

राणाकुंभा के मतानुसार, 'जिस ध्वनि की रचना में विचित्र याने अलग–अलग वर्ण–अलंकार हो, जिसमें ग्रह आदि स्वरों का संदर्भ हो और जो मनका रंजन करता हो, वह 'राग' है ।'

**विचित्र वर्णालंकारो विशेष (षो) यो ध्वनिरिह ।**

**ग्रहादि स्वर संदर्भो रंजको राग उच्यते ॥**

पंडित अहोबल रंजक स्वर संदर्भ को 'राग' कहते हैं ।

**रंजकः स्वरसन्दर्भो राग इत्यभिधीयते ।**

**सर्वेषामपि रागाणां समयोऽत्र निरूप्यते ॥**[(1)]

– संगीत पारिजात

शोधकर्ताने शोध के समय ऐसा पाया कि कोई भी एक स्वर लेकर, यदि उसे वादी या अंश मान लें तो उसके संवादी – अनुवादी नियम से मधुर स्वरमाला बनाकर उसे ग्रह न्यासादि की मर्यादा में रखकर अलग–अलग रचनाएं की जायें, तो उसके द्वारा मनुष्य के मनका रंजन हो, उसे 'राग' कहा जा सकता है ।

राग संगीत में शब्दों को और उनके भावों को संगीत द्वारा व्यक्त करते हैं । गीत के भावों को अलग–अलग स्वरों से गूंथते हैं । इस से काव्य के बिना संगीत की कल्पना साधारण जनसमाज के दिमाग में न बैठे ऐसी है । फिर भी संगीत स्वरप्रधान कला है । स्वर के साथ शब्द का भी आनंद है ही, किन्तु स्वर द्वारा अनुभूति का आस्वाद शब्दातीत और विशेष आनंददायक है । वाद्य संगीत जिस भाव की अभिव्यक्ति करता है, वह संगीत की स्वर प्रधानता को अपने आप सिध्ध करता है । अलबत्त भाषा की मदद के बिना केवल स्वर द्वारा ही भाव की अभिव्यक्ति करने का कार्य बहुत मुश्किल है । क्योंकि स्वर अमूर्त (Abstract) हैं । उनमें से क्षणमात्र के लिये मूर्त भाव बनता है और वह बनने के साथ ही धुएं की तरह हवा में फैल जाता है । वर्तमान युग में गायन की अपेक्षा वादन का आनंद लेने के लिये स्वर ज्ञान और संगीत की समझ की ज्यादा जरूरत है ।

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 97

स्वरलिपि और आज उपलब्ध पुल्स रेकर्ड और टेप रेकर्ड, सी.डी., केसेट जैसे वैज्ञानिक उपकरणों की अनुपस्थिति में मध्यकालीन युग की राग संगीत की परंपरा को सेंकडों वर्षों के बाद भी अक्षुण्ण बनाये रखने में ध्रुपद, धमार और ख्याल जैसे प्रबंध प्रकार का योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

### 3.10.5 राग की प्रकृति

राग में उपयोग किये गये स्वरों के अनुसार राग की प्रकृति अलग–अलग होती है । राग द्वारा उत्पन्न रस के ऊपर राग की प्रकृति का आधार होता है । उदाहरण के तौर पर शृंगार रस युक्त रागों की प्रकृति चंचल होती है, तो करुण रस प्रधान रागों की प्रकृति गंभीर देखने को मिलती है ।

राग की प्रकृति उसके चलन पर भी आधारित है । राग का चलन किस सप्तक में है ?, कौन से स्वर बार–बार उपयोग में लिये जाते हैं ?, किस स्वर पर लंघन होता है ?, ग्रह स्वर कौन सा है ?, न्यास के स्वर कौन से हैं ?, विन्यास, संयास आदि स्वर कौन से हैं ? इन सब की मदद से किसी भी राग की प्रकृति पहचानी जाती है । उत्तर भारतीय संगीत में राग रचना भावनाप्रधान होने से सूक्ष्म रूप से विचार करने से यह बात जानने को मिलती है कि, राग रचना में भावना के साथ स्वरों की स्थिति बदलती रहती है, जिसके कारण राग की रंजकता बढ़ जाती है ।

राग की प्रकृति जाननी हो तो राग में उपयोग में आते सभी उपकरणों के बारे में माहिती प्राप्त करना ज़रूरी है । राग की प्रकृति को पहचान कर उसका उपयोग कहाँ और कैसे करना यह तय किया जा सकता है । कोई भी राग प्रस्तुत करने से पहले उसके गायक/ साधक को उसकी प्रकृति पहचानना अत्यंत ज़रूरी है । दिनके २४ घण्टों के आठ प्रहर तय किये गये हैं । उनमें किस प्रहर में कौन–सा राग असरकारक बनता है, यह भी बताया गया है । दिवस और रात्रि के भाग में गाये जानेवाले रागों के स्वरों पर दृष्टिपात करने पर ऊपर के तत्त्वों के अनुसार ही निम्नलिखित सामान्य नियम मिल आयेंगे ।

#### (१) सुबह के राग

सुबह के रागों में कोमल स्वरों का विशेष उपयोग होता है । उनमें भी 'री' और 'ध' तो खास कोमल होते हैं । ज्यादातर 'म' स्वर शुध्ध होता है । भैरव, आसावरी, तोड़ी, भैरवी आदि रागों में वादी–संवादी स्वरों के रूप में धैवत और गांधार का उपयोग होता है ।

## (२) दिन के मध्य भाग के राग

दिन के दोपहर में गाये–बजाये जानेवाले रागों में गांधार निषाद कोमल आते हैं और रिषभ–धैवत का अल्पत्व होता है । इस समय का मुख्य राग सारंग है । उसका मिश्रण इस समय के भी रागों में होता है । धनाश्री, भीमपलासी आदि रागों के आरोह में रिषभ–धैवत नहि होते ।

## (३) तीसरे प्रहर बाद के राग

इस समय के रागों में गांधार निषाद शुद्ध और मध्यम तीव्र होते है, रिषभ–पंचम वादी–संवादी के रूप मे खास आते है । सांझ के मुख्य रागों में श्री रागादि में रिषभ तथा पूर्वी में पंचम अंश स्वर होता है ।

## (४) रात्रि के प्रथम भाग के राग

सुबह के रागों में रिषभ–धैवत कोमल थे, अब वे इस समय शुद्ध हो जाते हैं । मध्यम का तीव्रत्व खास ध्यान देने योग्य है । राग की गति या विस्तार मंद्र से मध्य सप्तक के अर्ध भाग तक विशेष रूप से होती है । जैसे कल्याण और उसके भेद ।

## (५) रात्रि के मध्य भाग के राग

इस समय के रागों में गांधार–निषाद कोमल और धैवत का अल्पत्व विशेष देखने को मिलता है । इस समय गाये जानेवाले रागों में कानड़ा और उसके तमाम प्रकारों में यही नियम लागु रहेता है । अवरोह में 'म रे' का लाग खास होता हैं ।

## (६) रात्रि के अंतिम भाग के राग

यहाँ रिषभ–धैवत का वेग कम होकर कोमल होता जाता है, एवं मध्यम–पंचम या षड्ज अंश या वादी हो जाते हैं । ऐसे सब रागों का विस्तार मध्य सप्तक के अर्ध भाग से तार सप्तक के अर्ध भाग तक होता रहता है । जैसे मालकौंस, बसंत, ललित, परज, शंकरा, बिलावल आदि ।

इस प्रकार हर एक समय के राग के खास लक्षण हैं । उनमें अपवादरूप राग बहुत आते हैं, किन्तु उनको अपवाद संबंधी नियमों द्वारा सुधारा जा सकता है । यह विषय बहुत कठिन और सूक्ष्म है । फिर भी आमतौर पर उपर्युकत नियमों का ध्यान रखा जाय, तो भी बहुत है । हर एक राग किस समय गाना यह नियत किया गया है । स्वरों के कुदरत के साथ संबंध होने के विषय में विशाल अध्ययन किया जा सकता है । इस पर से आर्य शास्त्रकारों की सूक्ष्म बुद्धि आश्चर्य उत्पन्न करती है । युरोपियन संगीत में यह विषय आता ही नहि ।[1]

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 100

### 3.10.6 राग का गायन समय

**यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम् ।**

**अतः स्वरस्य नियमात् रागोऽपि नियमः कृतः ॥**[1]

अर्थात् – पं. भातखंडेजीने कहा है, 'राग का गायन उसके समय के नियम पर किया जाय, तो ज्यादा सुंदरता आ जाती है ।'

**हिन्दुस्तानीय रागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिताः ।**

**स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्य लक्षणकोविदैः ॥**

– मल्लक्ष्यसंगीतम्

राग गाने–बजाने के समय संबंधित सिद्धांत को आधुनिक काल में पं. भातखंडेने व्यवस्थित रूप देकर उसके महत्त्व से श्रोताओं एवं गायक–वादकों को परिचित किया है । उन्होंने स्वर और समय की दृष्टि से रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल तीव्र स्वरों के अनुसार उनका विभाजन किया है ।

रागों के समय सिद्धांत की तरह ऋतु सिद्धांत भी अपना महत्त्व रखता है । संगीतशास्त्र में छः ऋतुएं दर्शायी गई हैं । उन तमाम ऋतुओं को संगीत में स्थान है । किन्तु वसंत और ग्रीष्म ऋतु संगीत की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं । मध्यकालीन महागायक संगीत सम्राट तानसेनने अपनी बंदिशों में रागों के गायन के समय का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :

ऋतु विषयक पाँच प्रकार की सामोपासना का निर्देश छांदोग्य उपनिषद में भी है ।

**ऋतुषु पंचविधं सामोपासीत वसंतो हिंकारो ग्रीष्मः**

**प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ।** [2]

अर्थात् – ऋतुओं में पांच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए । वसंत हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद् प्रतिहार तथा हेमंत निधन है ।

यदि समय पर या समय के अनुरूप हर कार्य किया जाय, तो वह सुंदर लगता है, अच्छा लगता है । समय का प्रवाह अविरत है, जो सतत बहा करता है । विश्व की कोई ताकत उसे कभी

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 101
2. पाठक, सुनंदा / राग की उत्पत्ति एवं विकास / पृ. 286

बाँध या रोक नहीं सकी । भारतीय शास्त्रीय संगीत में समय का बहुत महत्त्व है । भारतीय शास्त्रीय संगीत मतलब रागों की हारमाला है, जो ताल के आभूषण से सुशोभित हो उठती है । समय की जो बात की जाती है, वह राग गायन समय की नहीं, बल्कि किसी राग को कब प्रस्तुत किया जाना चाहिए, उस पर विचार या चिंतन हुआ है । राग गायन द्वारा प्रस्तुत होता है या वादन के माध्यम से । राग गायन–वादन का समय भारतीय संगीत में निश्चित किया गया है । इस समय के अनुसार यदि राग की प्रस्तुति की जाए तो वह प्रस्तुति असरकारक बनी रहती है । इस असरकारकता को तीव्रतम बनानी हो, तो भावयुक्त राग की प्रस्तुति उसके निश्चित समय में करना अत्यंत जरूरी है ।

योग्य व्यवस्था के अंग रूप में काल का जो विभाजन किया गया है, उसमें एक घटक या अंश दिवस है । एक दिवस २४ घण्टों का होता है । सूर्योदय से सूर्यास्त और सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय एक दिन या २४ घण्टे माना गया हैं । २४ घण्टों को तीन–तीन घण्टों के हिसाब से आठ प्रहरों में रागों के गाने का समय निश्चित किया गया है । यह समय निश्चित करने के लिये कोई चौकस सिद्धांत नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में परंपरागत रूप से राग गाने का समय तय किया गया है । उसमें किसी नवीन संशोधन के बिना परिवर्तन करना उचित नहीं है ।

### 3.10.7 राग भेद

प्राचीन ग्रंथों में रागों के कई विभिन्न प्रकारों से वर्गीकरण किए गए है ।

- स्वरों से वर्गीकृत
- समय से विभाजन
- स्वर और समय दोनों की दृष्टि से वर्ग किए गए ।

- **स्वरों के आधार पर राग भेद**

प्राचीन ग्रंथों में रागों के तीन भेद बताए गए है ।

१) शुद्ध राग २) छायालग राग ३) संकीर्ण राग

**१) शुद्ध राग :** जिस राग में अन्य किसी राग के स्वर लगने पर भी उसकी छाया न पड़ने पाये, उसे "शुद्ध राग कहते है ।

२) **छायालग राग :** दो रागों के मेल से अथवा किसी एक राग में अन्य किसी राग के स्वर आ जाने से दूसरे राग की जो छाया दिखाई दे जाती है, ऐसे राग को छायालग राग कहते है । इसे 'सालंक' भी कहते है ।

३) **संकीर्ण :** जिस राग में दो रागों से अधिक रागों का मिश्रण या मिलावट हो उसे 'संकीर्ण राग' कहते है । [1]

शोधकर्ताने शोध करने के बाद यह विशेषयोक्ति पर आयी है कि, रागों में एक विशेष प्रकार है, आश्रय राग उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में प्रत्येक ठाठ का नाम उस ठाठ से उत्पन्न होनेवाले किसी राग–विशेष 'जन्यराग' के नाम पर ही देखा जाता है । जिस जन्य राग का नाम 'ठाठ' को दिया जाता है, उसी को 'आश्रय राग' कहते है । किसी भी ठाठ से उत्पन्न होने वाले रागों में आश्रय राग का थोड़ा बहुत अंश अवश्य दिखाई देता है, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि आश्रय राग सभी जन्य रागों का उत्पादक है । जन्य रागों का उत्पादक तो ठाठ ही माना जाएगा । आश्रय रागों को 'ठाठ वाचक राग' भी कहते है । उत्तर भातीय संगीत पध्धति में कुल १० आश्रय राग माने गए है ।

### 3.10.8 रागों का समय विभाजन

उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में रागों का प्रयोग काल (गायन वादन का समय) दिन और रात्रि के चौबीस घंटों के दो भाग करके बाँटा गया है ।

पहला भाग : १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक ।

दूसरा भाग : १२ बजे रात्रि से १२ बजे दिन तक ।

इन में पहेले भाग को 'पूर्व भाग' और दूसरे भाग को 'उत्तर भाग' कहते है ।

'पूर्व राग' और 'उत्तर राग' को ही प्रचार में 'पूर्वांगवादी' तथा 'उत्तरांग वादी' राग भी कहते है । इनको ये नाम देने का कारण कुछ इस प्रकार है – सप्तक के सात शुद्ध स्वरों में तार सप्तक का 'सां' मिलाकर 'सारेगम, पधनीसां' इस प्रकार स्वरों की संख्या आठ करली जाए और फिर इसके दो हिस्से कर दिए जाए, तो 'सा रे ग म' यह सप्तक का 'पूर्वांग' और 'प ध नी सां' 'उत्तरांग' कहा जाएगा ।

---

1. पटेल, चिन्तन –शोधछात्र / महा शोधनिबंध / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के अप्रचलित रागों का अध्ययन / पृ.103

➢ पूर्वांगवादी राग

जिन रागों का वादी स्वर जब सप्तक के पूर्वांग अर्थात् 'सा रे ग म' इन स्वरों में से होता है, तो वे 'पूर्वांगवादी राग' कहे जाते है । ऐसे राग प्रायः दिन के पूर्व भाग यानी दिन के १२(बारह) बजे से रात्रि के १२ (बारह) बजे तक के समय में गाए-बजाए जाते है ।

➢ उत्तरांगवादी राग

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां' इन स्वरों में से होता है वे ''उत्तरांगवादी राग'' कहे जातो है । ऐसे राग प्रायः दिन के उत्तर भाग यानी के रात्रि के १२(बारह) बजे से दिन के १२(बारह) बजे तक ही गाए-बजाए जाते है ।

उपरोक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गायन-वादन का समय ज्ञात हो जाता है; जैसे आसावरी का वादी स्वर धैवत है जो उत्तरांग स्वर है तो इस राग का गायन-वादन का समय भी प्रातः है । इसीलिए इस राग को 'उत्तरांगवादी राग' कहा जाएगा । इस सिद्धांत में भी कई राग अपवादरूप पाए जाते है ।

## 3.10.9 स्वर और समय की दृष्टि से रागों के तीन वर्ग

उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में रागों के गाने-बजाने के बारें में समय-सिद्धांत प्राचीन काल से ही चला आ रहा है । यद्यपि प्राचीन राग में एवं अर्वाचीन रागों में समय-सिध्धांत पर कुछ ऐसे मतभेद है, जिनका कारण रागों के स्वरों में उलट फेर हो जाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही होगा की हमारे प्राचीन संगीत पंडितों ने रागों को उनके ठीक समय पर गायन-वादन का सिद्धांत अपने ग्रंथों में स्वीकार किया है । उसी को आज के संगीतज्ञ भी स्वीकार करके अपने रागों में समय सिद्धांत का पालन कर रहे है ।

**'हिंदुस्वानीचराग्राणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिताः ।**

**स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः ॥[1]**

– श्री मल्लक्ष्य संगीतम्

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 17

स्वर और समय के अनुसार उत्तर भारतीय रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल – तीव्र (विकृत) स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया ।

१) संधिप्रकाश राग (कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग)

२) शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग

३) कोमल 'ग' और कोमल 'नी' वाले राग ।[1]

**(१) संधिप्रकाश राग**

उपर बताए तीन अंगों में से प्रथम वर्ग अर्थात् कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग संधिप्रकाश रागों की श्रेणी में आते है । ध्यान रहे, इस वर्ग में कोमल 'रे–ध' के साथ साथ तीव्र 'ग' होना ज़रूरी है । यदि तीव्र 'ग' के स्थान पर कोमल 'ग' होगा तो वह तीसरे वर्ग में आ जाएगा ।

दिन और रात्रि की संधि यानी की मेल होने के समय को संधि–काल कहते है । प्रातः सूर्योदय पहेले और शाम को सूर्यास्त के कुछ पहले का समय ऐसा होता है जिसे ना तो दिन कह सकते है न हो रात । इसी समय को 'संधिप्रकाश की वेला' कहा जाता है और इस वेला में जो राग गाए–बजाए जाते है, उन्हें ही 'संधिप्रकाश राग' कहते है, जैसे भैरव, कालिंगड़ा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादी । संधिप्रकाश के भी दो भाग माने गए है –

(१) प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग (२) सायंकालीन संधिप्रकाश राग

जो राग सूर्योदय के समय गाए–बजाए जायेंगे वो प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग होंगे और जो सूर्यास्त के समय गाए–बजाए जायेंगे वो सायंकालीन संधिप्रकाश राग कहेंगे । संधिप्रकाश रागों में मध्यम स्वर बड़े महत्व का है । प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर 'मध्यम' कोमल यानी शुद्ध होगा और सायंकालीन संधिप्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम मिलेगा ।

संधिप्रकाश रागों की एक साधारण–सी पहचान यह भी है कि उनमें धैवत स्वर चाहे कोमल हो या तीव्र, किन्तु उनमें 'रे' कोमल और 'ग–नि' तीव्र ही अधिकतर मिलेंगे । यद्यपि कोई–कोई संधिप्रकाश राग इस नियम का अपवाद भी हो सकता है – जैसे कि 'भैरवी' ।

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 72

## (२) शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग

'रे-ध' शुद्ध (तीव्र) रागों के गाने-बजाने का समय संधिप्रकाश काल के बाद आता है । क्योंकि संधिप्रकाश-काल दिन में दो बार आता है। अतः इस वर्ग के रागों के गाने का समय भी २४ घंटों में दो बार आता है । इसमें कल्याण, बिलावल और खमाज ठाठ के राग गाए-बजाए जाते है ।

प्रात:कालीन संधिप्रकाश रागों के बाद गाए-बजाए जाने वाले रागों में दिन चढ़ने के साथ ही साथ शुद्ध 'रे' तथा शुद्ध 'ध' की प्रधानता बढ़ती जाती है । इस प्रकार प्रातः सात बजे से दस बजे तक और शाम को सात बजे से दस बजे तक दूसरे वर्ग के अर्थात् 'रे-ध' शुद्ध वाले राग गाए-बजाए जाते है । इस वर्ग में 'ग' का शुद्ध होना आवश्यक है और इस में 'म' का भी महत्व है ।

## (३) कोमल 'ग' और कोमल 'नी' वाले राग

इस वर्ग के रागों को गाने का समय शुद्ध 'रे-ध' वाले रागों के बाद आता है यानी की कोमल 'ग-नि' वाले राग दिन में दस बजे से चार बजे तक और रात्रि के १० बजे से ४ बजे तक गाए-बजाए जाते है । इस वर्ग के रागों की खास पहचान यह है कि उनमें 'ग' कोमल ज़रूर होगा चाहे 'रे-ध' शुद्ध हो या कोमल । इस तरह हमारे ग्रंथकारों ने विभिन्न प्रकार के अंगों को ध्यान में ले कर रागों के वर्गीकरण किये ।

शोधकर्ताने यह शोध के दौरान जाना है कि, भारतीय संगीत के अनुसार प्रत्येक राग का समय निश्चित होता है । आठों प्रहर के भिन्न- भिन्न राग निश्चित किये हुए है । प्राचीनकाल में उसका बहुत महत्त्व था और आज भी उतना ही महत्त्व है । राग-समय यह केवल रुढि का प्रतीक है । कालदर्शन के साथ उसका कोई संबंध नहीं है । वेदों की कौन-सी ऋचा किस समय पढ़नी चाहिए उसके भी कुछ नियम हैं । अरेबियन संगीत के रागों का भी निश्चित समय है । तोड़ी जैसे प्रात:कालीन राग संध्या के समय नहीं गाये जाते यह पूर्व निर्धारित बात है । भैरव राग गाकर सूर्योदय और पुरिया गाकर सूर्यास्त की कल्पना आँखों के आगे साकार की जा सकती है । राग का समय न होने पर भी लोगों की अपेक्षा पूरी करने के खातिर बड़े कलाकार कभी राग के समयचक्र के विरुद्ध राग का गायन करते है । उसके लिए यह कारण माना जा सकता है कि कलाकार की गायकी उसका धन कमाने का साधन बन गई है । इसी से लोगों की इच्छा के अनुसार कलाकार को राग की

प्रस्तुति करनी पड़ती है । मानव मन पर रुढि का गहरा प्रभाव पड़ा है । उत्तर भारतीय और कर्णाटकी संगीत की नींव वास्तव में एक ही होने पर भी कर्णाटकी संगीत में राग को समय का कोई बंधन नहीं है । कोई भी राग किसी भी समय गाया–बजाया जा सकता है ।

कलाकार को रियाझ करते समय रागों के समय का बंधन नहीं रखना चाहिए । जिससे तमाम रागों को अच्छी तरह आत्मसात् किया जा सके । किन्तु लोगों के समक्ष राग की प्रस्तुति करते समय तमाम रागों को बंधारण और समय के अनुसार ही प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे राग के मूलभूत प्रभाव, माधुर्य और परंपरा को बनाये रखा जा सके और तभी उस राग का प्रभाव उत्पन्न किया जा सके । रियाझ करते समय और विद्यार्थी को सिखाते समय कोई भी राग किसी भी समय पूरा आनंद देता है । यह केवल रुढि का ही प्रभाव है । महफिल या संगीत सभा में राग के समय के मुताबिक ही गायन होना चाहिए ।

राग के समय के संबंध में जो प्रणालि है, उसका रक्षण करना अच्छा है, क्योंकि उसका आधार मजबूत है । इस विचार प्रणालि का आधार इतना सुगठित है कि कौन–सा राग किस वातावरण में कैसा प्रभाव या परिणाम उत्पन्न करेगा यह स्पष्ट देखा जा सकता है । राग समयचक्र के आधार पर कोई विशेष मनोदशा में विशेष राग को पसंद कर उसका गायन करना चाहिए । प्राचीन पंडितोंने समयानुकूल जो राग रचना प्रस्थापित कर उसके आधार स्वरूप विचार प्रणालि कौन–सी थी, उसका विवेचन भी ध्यान में रखना चाहिए ।

शोधकर्ताने राग और समय के बारे में शोध करते समय यह पाया कि, रागचक्र को दिन के चार और रात्रि के चार कुल मिलाकर आठ प्रहरों में विभाजित किया है । प्रत्येक प्रहर में एक से अधिक राग गाने का प्रबंध है । कौन–सा राग, किस समय एवं किस क्रम में गाना चाहिए उसका नियम निश्चित है । संधिप्रकाश राग वे हैं, जो सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाये जाते हैं । भैरव, बिभास, कालिंगडा, जोगिया प्रातःकालीन राग हैं, जो दिवस के प्रथम प्रहर में गाये जाते हैं । इन रागों में प्रमुख स्वर रचना में रिषभ–धैवत कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध होते हैं । इससे इन सब रागों में रस निर्माण एक समान होता है । इसका अर्थ यह है कि प्राचीन पंडितोंने इसे संधिकाल के प्रभाव का परिणाम माना होगा । प्रातः संधिकाल और सायं संधिकाल में साधारणतया बारह धण्टों का अंतर

माना गया है । यदि प्रात: समय सुबह छ: से नौ हो, तो सांझ का संधि समय भी सांझ के छ: से नौ होगा । यह कबूल करना पड़ेगा कि कितनी खूबी से दिवस और रात्रि के रागों का मेल बिठाया होगा । रागों की रचना इस प्रकार बदलती जाती है कि जिस तरह मानव की मानसिक स्थिति सुबह से लेकर रात्रि तक होती है । प्रात:काल में मानव का मन शांत होता है । इस समय मन में ईश्वर संबंधी पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं । पिछले दिन के विचार और भावात्मक उथल–पुथल भूला देते हैं । ठीक इसी तरह संध्या समय में मनुष्य दिन भर के कामकाज से निवृत्त होकर अपना मन शांत करने का प्रयास करता है । किन्तु यह शांति इतनी शुद्ध नहीं होती, जितनी प्रात:काल की होती हैं । दिनभर के कामों की थकान एवं भिन्न–भिन्न विचारों कि उपस्थिति की झलक इसमें मिश्रित हुई दिखाई देती हैं । राग की रचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रात:कालीन रागों में जो कोमल रिषभ–धैवत हैं उनके साथ मन की चंचलता का दर्शक तीव्र मध्यम भी संध्या समय के रागों में मिश्रित कर दिया है ।

इस तरह सुबह के नौ से बारह बजे तक जोनपुरी, आशावरी और सारंग जैसे रागों की योढजना और रात्रि के नौ से बारह बजे तक क्रमश: इन रागों की छायावाले, भिन्न भावनावाले कान्हड़ा के प्रकारों की योजना की गई है ।

दिवस चढ़ने और उतरने के साथ–साथ मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ और उनके साथ रागों की स्वररचना भी बदलती जाती हैं । वास्तव में समयानुकूल राग रचना की विभिन्न भावना, एवं रसदर्शक व्यवस्था से कौन–सी भावना का दर्शक कौन–सा राग है और उसका समय कौन–सा है यह जाना जा सकता है । समयानुकूल राग रचना आदि काल से चली आती है, जो अति महत्त्वपूर्ण भी है । रागों का गायन उसी समयचक्र के अनुसार होना चाहिए । राग रचना मनुष्य के बदलते मिजाज का प्रतिबिंब है । संगीत एक कला है और उसका उपयोग जन मन रंजन के लिये है । राग का रस चाहे शृंगार हो या करुण, परंतु उसके गायन, वादन और श्रवण से आनंद ही प्राप्त होता है और मानसिक प्रफुल्लता मिलती है, यह बात निश्चित है ।(1)

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 73

### 3.10.10 अध्वदर्शक स्वर मध्यम का महत्व

उत्तर–भारतीय संगीत पद्धति में रागों के गाने–बजाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर विशेष महत्त्वपूर्ण है । यह स्वर रागों के समय–विभाजन में पथ–प्रदर्शक का कार्य करता है, इसलिए इसे 'अध्वदर्शक स्वर' कहा जाता है । सुबह के समय प्रायः कोमल (शुद्ध) मध्यम का राज्य रहता है । कोमल 'रे–ध' वाले संधिप्रकाश रागों में यदि शुद्ध मध्यम प्रबल होता है, तो वे 'प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग' होते हैं और शाम के रागों में यदि तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है, तो वे 'संध्याकालीन संधिप्रकाश राग' कहे जाते हैं । इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर सायंकाल की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रातःकाल की । यमन, हमीर, कामोद, केदार इत्यादि तीव्र मध्यम वाले राग सायंकाल में रात्रि के प्रथम प्रहर के अंदर ही गा लिए जाते हैं । शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों से तीव्र मध्यम का प्रयोग शुरू होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है । इसके पश्चात् रात्रि के दूसरे प्रहर में जब बिहाग गाने का समय आता है, तो धीरे–धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है । वह सूचित करता है कि प्रभात का समय निकट आ रहा है और रात्रि काफी बीत चुकी है । इस प्रकार तीव्र मध्यम के बाद शुद्ध मध्यम की प्रधानता स्थापित हो जाती है । प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों में पहले शुद्ध मध्यम वाले राग भैरव, कालिंगडा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यम वाले राग आ जाते हैं । किंतु इनमें शुद्ध मध्यम का महत्व अधिक रहता है; जैसे रामकली और ललित इत्यादि । इसके पश्चात् जब 'रे–ध' शुद्ध वाले रागों का गाने का समय आता है, तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है; जैसे – बिलावल आदि । फिर कोमल गांधार वाले रागों का समय आता है, तो दोनों मध्यम का प्रयोग आरंभ हो जाता है । इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र, दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है । किसी राग में कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, किसी में तीव्र मध्यम की ।

सूर्यास्त के समय जब संध्याकालीन संधिप्रकाश राग आते हैं, जैसे मारवा, श्री इत्यादि तो उनमें तीव्र मध्यम का महत्त्व रहता है । इसके पश्चात् 'रे–ग' शुद्ध वाले राग आते हैं; जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि, तो उनमें तीव्र मध्यम का ही विशेष प्राधान्य रहता है । अन्त में जाकर जब

कोमल 'ग' वाले रागों के गाने का समय आता है, तो शुद्ध मध्यम वाले रागों की फिर प्रधानता हो जाती है; जैसे बागेश्री, काफी, मालकौंस इत्यादि ।

इसी लिए कहा जाता है कि हमारी पद्धति में मध्यम स्वर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । केवल मध्यम के परिवर्तन से गायन में अन्तर दीखने लगता है । भैरवी प्रातःकाल के प्रथम प्रहर में गाया जाता है, किन्तु इसके स्वरों में यदि कोमल मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाए, तो सायंकाल में गाया जाने वाला पूर्वी राग हो जाएगा तथा प्रातःकाल गाए जाने वाले बिलावल राग के स्वरों में सिर्फ कोमल मध्यम हटाकर तीव्र मध्यम करने से रात्रि को गाया जाने वाला राग यमन हो जाता है । इस प्रकार केवल मध्यम का स्वरूप बदल देने से प्रातःकाल के स्थान पर ये राग रात्रिगेय हो गए । इसी लिए कहा जाता है कि मध्यम के इशारे पर ही संगीतज्ञों के दिन और रात होते हैं । यद्यपि इस नियम के कुछ राग अपवाद भी हैं, किन्तु बहुमत इसी ओर है । [1]

1. वसंत / संगीत विशारद / संगीत प्रेस – हाथरस / पृ. 199

### 3.10.11 रागों का समयचक्र

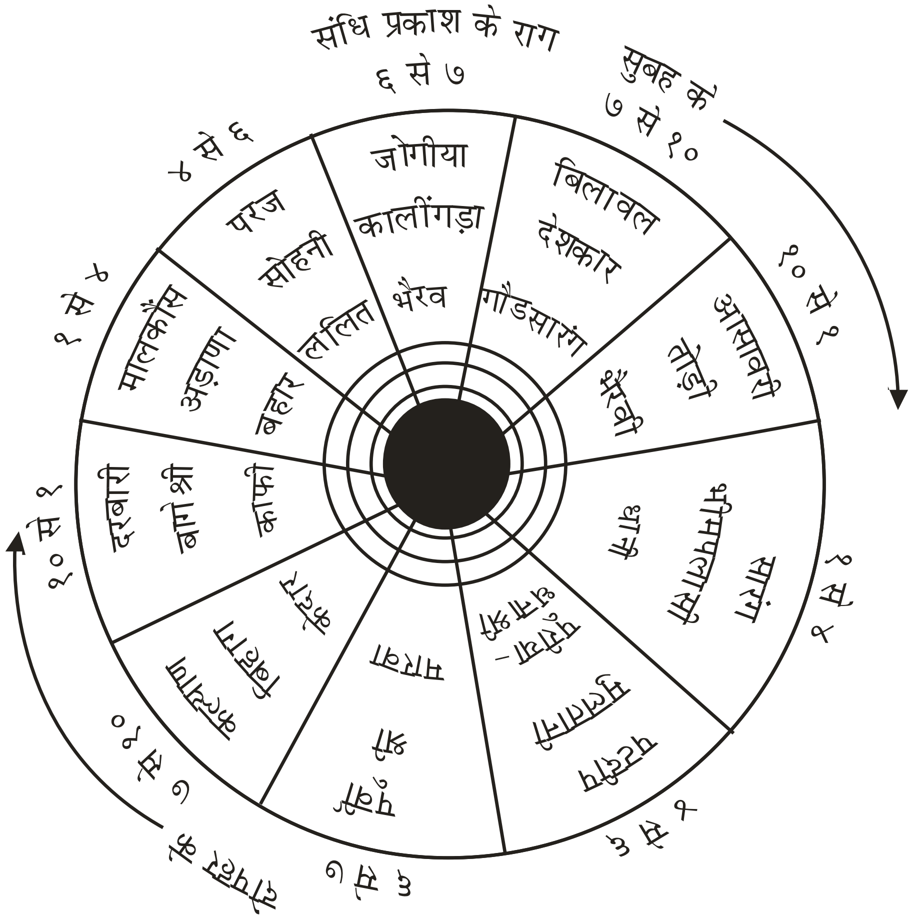


### 3.10.12 राग विस्तार

गायकी की निर्माण विधि में स्वर–विस्तार भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । स्वर विस्तार अथवा आलाप के अनेक प्रकार हैं । कुछ गायक सरगम गाकर, कुछ स्वरों के आकार द्वारा तथा कुछ नोम् तोम् के बोल में आलाप करते हैं । कुशलतापूर्वक किया गया स्वर विस्तार राग का वातावरण खड़ा करने में सहायक बनता है । मींड, कण, गमक तथा विभिन्न अलंकारों की योजना से स्वर विस्तार अत्यंत आकर्षक और प्रभावोत्पादक बन जाता है । कुछ संगीतज्ञ बहुत ही विलंबित लय में आलाप करते हैं । कुछ संगीतज्ञ गमक प्रधान आलाप करते हैं । इस तरह राग–विस्तार के तत्त्वों में से किसी एक या दो तत्त्वों को प्रधानता देकर राग विस्तार कर गायन शैली में विभिन्नता दर्शाते हैं, तब प्रत्येक गायन शैली अलग–अलग गायकी के निर्माण में सहायक बनती है ।

### 3.10.13 राग चयन

संगीत का अध्ययन और अभ्यास कर लेने के बाद जब गायक अनेक रागों को सीख लेता है तो उनमें कुछ राग ऐसे होते हैं, जो गायक की स्वाभाविक रूचि के अनुसार उन्हें अधिक प्रिय लगते हैं । गायक के शरीर के भीतर स्वरों के उद्‍गमस्थान मुख्यतः दो हैं – १. कण्ठ, २. हृदय । कण्ठ से सभी गायक का हृदय–तत्त्व एक दूसरे से भिन्न होता है । वह अनेक रागों के प्रदर्शन से समर्थ होता हुआ भी विशेष रागों का अभ्यास करने से गायक रागों पर एकाधिकार प्राप्त कर लेता है । देखने में भी यही आता है । पण्डित विनायक राव को मालकंस तथा फैयाज खाँ को जयजयवन्ती राग अधिक प्रिय था । इसी प्रकार सभी गायकों को कुछ राग अधिक प्रिय होते हैं, जिन्हें वे बार–बार गाया करते हैं । संगीत ऐसी अपरिमित विद्या है कि यदि साधक जीवन भर एक ही राग का अभ्यास करता रहे, तो भी वह उसके सम्पूर्ण स्वरूप का अंत नहीं पा सकेगा ।(1)

संगीत की उत्पत्ति से लेकर राग तक की यात्रा शोधछात्रा इस महानिबंध के प्रथम प्रकरण में शास्त्रोक्त रूप से करने के बाद यह प्रथम प्रकरण को यहाँ पर पूर्ण घोषित करती है ।

### 3.10.14 दस वीध राग लक्षण

राग अपनी जिस चरम विकसित अवस्था तक पहुँच चुका है उसके कारण उसकी यह स्थिति विशेष सामान्य से भिन्न हो गई है । इसी कारण सभी संगीतप्रिय जन उसे भिन्न–भिन्न मानवेत्तर संज्ञाओं से सम्बोधित करते हैं – दिव्य पुरूष, महामन्त्र आदि–आदि । यह किसी राग विशेष के गुण नहीं हैं । ये सामान्य उपमान हैं जो किसी राग में निहित अद्‍भुत रसमयता के बोधक हैं । राग यह रसमय रूप सूक्ष्म है जो स्थूल के बिना अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता । किसी व्यक्ति को महामानव जिन गुणों के कारण कहा जाता है, वे उसके स्थूल शरीर से भिन्न नहीं हैं । जिस प्रकार साधारण मानवों का मूर्त्तरूप एक जैसा है, हाथ–पैर, नाक–कान आदि शारीरिक अंगों की संख्या समान है, उसी प्रकार अपार रस–जन्य राग का आधार उसके वे स्वर ही होते हैं । उन स्वरों को प्रयोग की दृष्टि से क्या–क्या उपमान दिये जा सकते हैं, यहीं राग के सामान्य लक्षण हैं ।

1. चौधरी, सुभाष रानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 83

इस दृष्टि से इन लक्षणों की संख्या तेरह है । यदि राग के सूक्ष्म तत्त्वों को भी लक्षणों में जोड़ दिया जाए तो इनकी संख्या और भी बढ़ जाएगी । जैसाकि पूर्व निर्दिष्ट है, पहले स्थूल का ही विश्लेषण किया जाना चाहिए क्योंकि वह सूक्ष्म की अभिव्यक्ति का आधार है । अतः इस दृष्टि से पहले सामान्य लक्षणों का क्रमानुसार स्वरूपगत विवेचन इस प्रकार है ।

भरत की मान्यताएं निस्सन्देह ऐसा निर्विवाद महत्त्व रखती हैं जिन्हें हर विषय के आरम्भ के लिए आधार बनाया जाता है । भरत ने जाति–लक्षणों का विश्लेषण करते हुए इस प्रकार कहा है –

**ग्रहांशो तारमन्द्रौ च न्यासोपन्यास एव च**

**अल्पत्वं च बहुत्वं षाडवौडविते तथा ।**

नाट्यशास्त्र

इसके अनुसार जाति या राग के दस लक्षण हैं – ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, तार, मन्द्र, अल्पत्व, बहुत्व, औड़त्व और षाड़त्व । शार्ङ्गदेव ने जब संगीत रत्नाकर की रचना की तब उनके सामने जाति की अपेक्षा राग का विवेचन विशेष अभिप्रेत था । जातियों के विवेचन में परम्परा का अनुपालन मात्र ही अपेक्षित था । अतः उन्हों ने इस दस लक्षणों में संन्यास, विन्यास और अन्तरमार्ग तीन अन्य लक्षण और जोड़े । आज के संदर्भ में स्पर्श स्वर, कर्ण स्वर और अन्य स्वर लगाव पद्धतियों तथा तज्जन्य आविर्भाव, तिरोभाव भी राग लक्षणों में जोड़ा जा सकता है । ये सभी स्थूल प्रयास हैं जो राग में निहित उस अपूर्व भाव तत्व के आविर्भावक हैं जिसके कारण वह कला की आत्मा–रस की सापेक्षता प्राप्त कर सका है । इसी कारण वह ब्रह्मानन्द सहोदर व लोकोत्तर आनन्द का जनक बन सका है । यह सभी विशेषताओं को राग के लक्षण मानकर उनका क्रमानुसार संक्षिप्त उल्लेख कुछ इस प्रकार किया जा सकता है ।

यह मानना है कि, जाति के दस लक्षणों को राग के दस लक्षण मान लेना चाहिए, क्योंकि जाढि तयाँ राग की जननी है । विश्लेषण और मनन के पश्चात् प्रत्येक चिंतक धारणाओं के अनुसार अपना मत प्रस्तुत करता है । जातियाँ राग की जननी है या नहीं, इस सम्बन्ध में परम्पराओं और कुछ ऐसे शब्दों को आधार बनाया जा सकता है जिनसे राग और जाति के पूर्वापर सम्बन्धों का बोध हो सके ।

जाति – सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण जो तत्कालीन नई स्वरावलियाँ थीं, उन्हें भरत ने मूल जातियों में भलें ही सम्मिलित न किया हो लेकिन उन्हें जातिराग कहकर नया सम्बोधन अवश्य दिया जा

सकता है । यह मानना जाति और राग के परस्पर सम्बन्धों का कारण निश्चित रूप से है । दूसरी बात यह भी कह सकते है कि कोई भी नई कलात्मक उद्भावना अपने पूर्व की निश्चित कड़ी होती है । इसी कारण लगभग सभी विद्वानोंने जाति को राग की जननी स्वीकार करते हैं ।

राग परम्परा के संचालक मतंग ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा लेकिन मूल दस लक्षणों को उन्होंने जाति के लक्षण कहकर अपनी पुस्तक में स्थान दिया है । शार्ङ्गदेवने राग लक्षणों में जाति के दस लक्षणों की स्वीकृति अवश्य दी है । इस विवेचन के अनुसार जाति और राग दोनों के लिए समान रूप से इन दस लक्षणों का महत्व है ।

❖ **ग्रह**

जाति या राग के मूल लक्षणों में सबसे पहला 'ग्रह' है । ग्रह के सम्बन्ध में भरत का कथन है –

**ग्रहस्तु सर्वजातिनामंश एव ही कीर्तितः ।**

**यत्प्रवृतं भवेद्‌गानं सोंऽशो ग्रह विकल्पितः ॥**

इसके अनुसार भरत एक ही स्वर को जहाँ से जाति का आरम्भ होना चाहिए, 'ग्रह' और 'अंश' दोनों विशेषण लेते हैं । तत्कालीन मूल अठारह जातियों के स्वर विस्तार में इन दोनों के स्वीकृत नियम को कहाँ तक व्यावहारिकता मिली है, यह अवश्य ही विस्तृत विश्लेषण का विषय हैं । 'ग्रह' स्वर 'अंश' भी हो सकता है या नहीं, यह निश्चित नहीं है । हर जाति के लिए आधार स्वर निश्चित था और उसे ही ग्रह स्वर मानना चाहिए । उस समय जातियों के जो अन्य विकृत प्रकार बने, हो सकता है उनके स्वर विस्तार में कहीं–कहीं एक ही स्वर ग्रह और अंश दोनों लक्षणों के लिए प्रयुक्त होता रहा है । दोनों लक्षण पृथक् हैं अतः जाति या राग की प्रकृति अनुसार–स्वर पृथक्–पृथक् होने चाहिए ।[1]

वर्तमान चलन के अनुसार सभी रागों का आधार स्वर षड्ज है, लेकिन बहुत से राग ऐसे हैं जिनके स्वर–विस्तार में षड्ज के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर भी 'ग्रह' की भूमिका निभाता है – कल्याण, बिहाग, भीमपलासी आदि बहुत–से राग ऐसे हैं जिनका विस्तार मन्द्र निषाद से आरम्भ होता है । जयजयवन्ती आदि कुछ रागों में भी ग्रह का निर्वाह अन्य स्वर से हुआ हैं – ध़ नि़ रे । लेकिन ये स्थूल नियम नहीं हैं । कुछ भी हो अधिकांश रागों का ग्रह स्वर षड्ज ही है ।

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 8

## ❖ अंश

हर राग में लगने वाले सभी स्वरों का समान महत्त्व नहीं होता । एक स्वर ऐसा होता है जिसे उस राग का प्रत्येक दृष्टि से मुख्य स्वर कहा जा सकता है । इसी विचार के अनुसार भरत ने ऐसे स्वर को अंश संज्ञा से सम्बोधित किया है – मूल, बीज या आत्मा । वर्तमान संदर्भ में इसे वादी भी कहते हैं । सभी का अभिप्राय एक जैसा हैं । निस्सन्देह वादी या अंश कहलाने वाला स्वर राग की आत्मा या उसमें निहित रस का बोधक होता है ।

अंश स्वर निम्न दश लक्षणों से युक्त रहता है –

१. इसमें राग का निवास हो

२. इससे राग का आविर्भाव होता हो

३,४. वह तार तथा मन्द्र अवधि का नियामक हो

५. नानाविध स्वर समूहों में उसका सर्वाधिक प्रयोग हो तथा उसके संवादी एवं अनुवादी स्वर भी शेष स्वरों की अपेक्षा प्रबल हों ।

६, ७, ८, ९, १० – जो ग्रह, अपन्यास, विन्यास, संन्यास तथा न्यास के माध्यम से समस्त जाति को परिवेष्टित करता हो ।

सबसे पहली विशेषता, जिसमें राग का निवास हो, अल्पत्व महत्वपूर्ण है । आज के संदर्भ में इसका अर्थ है – जिस स्वर के कारण राग के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पहचान हो, वह अंश या वादी स्वर है । राग और रस के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए आचार्य बृहस्पति ने वादी स्वर को स्थायी भाव की उपमा दी है । अंश या वादी स्वर राग की निश्चित ही आत्मा है । ग्रह, अंश, न्यास, संवादी, अनुवादी सभी की अवधारणाएं अंश स्वर पर ही निर्भर करती हैं । इसी कारण अंश या वादी स्वर को राजा की संज्ञा दी है । किसी–किसी जाति के एक से अधिक अंश स्वर हो सकते होंगे लेकिन आज के नियमानुसार एक राग का एक ही अंश या वादी स्वर है । उसी के आधार पर षडज–मध्यम या षडज–पंचम भाव से संवादी स्वर का निर्धारण होता है, अनुवादी स्वरों के प्रयोगगत स्वरूप भी निश्चित होते हैं । संक्षेप में अंश या वादी स्वर अत्यन्त महत्त्व का है ।

## ❖ न्यास–अपन्यास

न्यास का अर्थ है समाप्ति या ऐसा ठहराव, जो मधुरताजन्य हो, चित्ताकर्षक हो । इस प्रकार की प्रक्रियाएं जिस स्वर पर निर्भर करती हों, वह न्यास स्वर है । अधिकांश रागों में स्वर–विस्तार का समापन षडज पर ही होता है । बहुत कम ऐसे राग हैं जिनमें सौंदर्य बोध के कारण किसी अन्य स्वर पर समापन हो, जैसे मालगुँजी में – ध़ नि़ स रे ग म । मध्यम पर ऐसा न्यास किया जाता है जिससे राग मधुर हो जाता है । सामान्यत: षडज ही सभी रागों का न्यास स्वर है ।

अपन्यास के लिए वे स्वर विशेष हो सकते हैं जिनसे राग में कुछ अनोखापन या आकर्षण का भाव परिलक्षित हो । तिलककामोद के लक्षण में भातखण्डेजी कहते हैं चक्रवत नि को अपन्यास कर न्यारो । विभिन्न स्वर संयोगों से निषाद पर थोड़ा ठहराव दिखाना तिलककामोद की मधुरता बढ़ाता है । स रे ग स नि़ – इसी प्रकार का अल्प ठहराव विभिन्न रागों में अनेक स्वरों पर होता है, जिससे उन रागों की मधुरता बढ़ जाती है । ये राग के चलन के अनुसार निश्चित किये जा सकते हैं ।[1]

## ❖ संन्यास–विन्यास

संन्यास–विन्यास ये प्रक्रियाएं और इनके लिए स्वर विशेष का चयन किसी भी राग की आलापचारी को देखकर किया जा सकता है । ये ठहराव की प्रक्रियाएं हैं, इसी दृष्टि से ही इन्हें समझना चाहिए ।

## ❖ अलपत्व–बहुत्व

इन दोनों नियमों का सम्बन्ध पूर्वोक्त सभी लक्षणों से है, विशेषरूप से वादी स्वर के साथ । जब किसी राग का स्वर विस्तार है तो उसमें हर एक स्वर का अलग–अलग स्थान या महत्त्व निर्धारित किया जा सकता है । जिस स्वर का प्रयोग अधिक होगा, उस पर बहुत्व का नियम लागू होगा और जिसका कम, उस पर अल्पत्व का नियम लगाया जा सकता है । अल्पत्व और बहुत्व के निश्चय करने में अभ्यास और लंघन–ये दो कारण हो सकते हैं । बहुत्व में अलंघन और अभ्यास तथा अल्पत्व में लंघन और अनभ्यास – ये दोनों बातें ध्यान में रखी जा सकती हैं ।

---

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 9

## ❖ मन्द्र–तार

ये दोनों लक्षण राग की प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं । अंश के दस लक्षणों में भरत ने स्पष्ट कहा है कि इस नियमों का निर्धारक राग का वादी स्वर होता है । पूरे सप्तक को पूर्व और उत्तर दो भागों में बाँटा गया है । इन्हीं के आधार पर राग में मन्द्र और तार का नियम लागु होता है । जिस राग का वादी स्वर 'स' 'रे' 'ग' में से कोई एक होगा, निश्चित रूप से उसका विस्तार मन्द्र और मध्य में अधिक होगा । जिन रागों में वादित्व 'प' या 'ध' इन दोनों में से किसी को दिया जाता है – उनका विस्तार मध्य और तार सप्तकों में होता है । मध्यम दोनों ही रूपों में अपनी भूमिका निभाता है । इसका वादी होना मन्द्रत्व का कारण भी हो सकता है और तार चलन का भी । काफी अंशों तक पंचम की भी ऐसी ही भूमिका है ।

## ❖ औड़त्व – षाड़त्व

किसी भी राग के आरोह–अवरोह में सभी सात स्वरों का ही प्रयोग नहीं होता । पाँच या छः स्वर भी लग सकते हैं । नियमों के अनुसार राग में अधिक से अधिक सात और कम–से कम पाँच स्वर लगने चाहिए । इसी को औड़त्व और षाड़त्व नियम कहते हैं । षाड़त्व में कौन–सा स्वर वर्जित होना चाहिए, यह सरसताबोधक दृष्टिकोण के अनुसार निश्चित किया जा सकता है । इसी प्रकार औड़त्व में कौन–से दो स्वर वर्जित किये जा सकते हैं जिनके अभाव में शेष निर्धारित स्वर रूप में रागत्व की अवतारणा हो सके, यह तथ्य ध्यान में रखना होगा । एक थाट में ४८४ स्वर समूह बन सकतो हैं, गणित के अनुसार ऐसा बिलकुल सम्भव है, लेकिन ये सभी राग बन जाएँ, ऐसा सम्भव नहीं । किसी भी राग में स्वर पाँच हों अथवा छह, इसका निर्णय रागत्व की भावना पर निर्भर करता है । संक्षेप में ये राग के सामान्य लक्षण है ।[1]

1. चौधरी, सुभाष रानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 86

### 3.10.15 राग के नियम

१. राग में रंजकता का होना आवश्यक है ।

२. राग किसी न किसी मेल या थाट पर आधारित होना चाहिए ।

३. राग में आरोह–अवरोह दोनों का होना जरूरी है क्योंकि राग के आरोह–अवरोह के स्वरों की संख्या बदल जाती है, जिससे उस राग की जाति निर्धारित की जाती है । केवल आरोह के साथ ही राग की पहचान नहीं हो सकती ।

४. राग में वादी–संवादी–अनुवादी स्वरों का होना जरूरी है । दो राग जिनके स्वरों का स्थान एक जैसा हो, वादी–संवादी बदलने पर अलग–अलग हो जाते हैं ।

५. राग में कम से कम पांच स्वर और ज्याद से ज्यादा सात स्वर ही हो सकते हैं । (यहां एक स्वर के दो रूपों को मिलाकर न समझा जाए)

६. राग में षड्ज स्वर कभी भी वर्जित नहीं हो सकता क्योंकि षड्ज को आधारित स्वर कहा जाता है । (अर्थात् छः स्वरों की उत्पत्ति करने वाला)

७. राग में 'म' और 'प' स्वर दोनों एक साथ वर्जित नहीं किए जा सकते क्योंकि इसके आधार पर संवाद भाव आधारित होता है जैसे – षड्ज मध्यम संवाद, षड्ज पंचम संवाद आदि इन नियमों को मुख्य रखकर ही रागों का गायन–वादन किया जाता है ।[1]

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 98